॥ ॐ ॥

विधवा विश्रान्ति

स्वामी आत्मदेव ।

॥ ओ३म् ॥

विधवा विश्रान्ति

लेखक

श्रीस्वामी आत्मदेवजी महाराज

पुस्तक मिलने के पतेः—

१ पं० तुलाराम कथावाचक, नजीबाबाद।

२ लाला बद्रीप्रसाद सालग्राम,
कटरा रामलीला, हिसार (पंजाब)।

मूल्य—६ आने

मुद्रकः—शिवशंकर शर्मा अध्यक्ष टाइम्स प्रेस, बिजनौर।

* ॐ सर्वविश्वात्मने नमः *

प्रस्तावना

आर्ष जीवन को प्राप्त करना ही द्विज जाति के स्त्री पुरुषों का सुन्दर कर्तव्य है अन्यथा यह उक्ति उचित ही होगी कि "काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते" अर्थात् काक आदि जीव भी अपनी उदरपूर्ति तो कर ही लेते हैं। उस जीवन को सम्यक् प्रकार से प्राप्त करने के लिये आर्यगण सन्त-समागम की इच्छा रखते हैं क्योंकि सन्तों के सद् वचनों में पीयूष-पान का तथा सत्सङ्गति में स्वर्गवास का आनन्द प्राप्त होता है। उन्हीं सन्तों की वाणी जब किसी ग्रन्थ के रूप में निबद्ध होती है तो उसका यह सृजन विविध दुःख-निमग्न मानवों के कल्याण के हितु अलौकिक माना जाता है। इसी भाव को लेकर श्री श्री १०८ स्वामी परमहंस परिव्राजक आत्मदेव जी महाराज ने समय २ पर जैसे "अद्वैत आनन्द दर्शन" आदि पुस्तकें रचकर अज्ञानान्धकार-निमग्न मनुजों के लिये तथा जिज्ञासु और

भक्त पुरुषों के कल्याण के लिये प्रकाशित कीं। इसके अनन्तर यह छोटी सी वेदान्त–पुस्तिका भी भक्त जनों के प्रार्थना करने पर प्रादुर्भावित की है। इस पुस्तक का विषय अद्भुत गूढ़ वेदान्त का होते हुए भी रोचक भावों से अनुपम, शिक्षाप्रद तथा सरल है। जिज्ञासु जन रोचक तथा साहित्यिक भाषा का ध्यान न रखते हुए पुस्तकोक्त उपदेश तत्व को समझें। जन साधारण के हित के लिये प्राकृतिक बोल चाल की भाषा में ही विषय वर्णित किया है। अस्तु, इस पुस्तक के प्रकाशित करने में धन की आवश्यकता हुई तो उसका समस्त व्यय हिसार निवासी लाला बद्रीप्रसाद शालग्राम सिंगल जी ने अपने ऊपर लिया, अतः उनका यह कार्य प्रशंस–नीय है।

निवेदक:—

बनवारीलाल शास्त्री प्रभाकर

हिसार (पञ्जाब)

दण्डी स्वामी रामेश्वरानन्द तीर्थ काशी

* ओ३म् सर्वं विश्वात्मने नमः *

भूमिका

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशि वर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्न वदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥१॥
यस्य स्मरण मात्रेण विघ्ना दूरं प्रयान्ति हि ।
वन्देऽहं दन्ति वक्त्रं तं वाञ्छितार्थ प्रदायकम् ॥२॥

प्रथम मैं उस सच्चिदानन्द आत्मा को नमस्कार करता हूं जो बोध स्वरूप है तथा जो विवेकियों को अपनी प्रत्यगात्मा से अभिन्न अनुभव होता है और अविवेकियों को अविचार करके दूर प्रतीत होता है। जिसके एक पाद में तीनों लोक स्थित हैं और तीन पाद निज स्वरूप में स्थित हैं। जिसके निमेष उन्मेष से प्रपंच का आविर्भाव तथा तिरोभाव होता है जो सबका प्रेमास्पद है उस सर्वेश्वर को सर्वतोभावेन नमस्कार है तथा जो ब्रह्म की विवृतभूता वाणी अधिष्ठात्री देवी है तथा जो सरस्वती आदि नामों से प्रसिद्ध है ऐसी मनसादेवी हरिद्वार वासिनी को कोटिशः नमस्कार है। हे मातः! आप

ब्रह्म की विवृतभूता होने से परमेश्वर से उत्पन्न होने के कारण सर्वशक्तिमती माया प्रसारिणी हो। अतः मेरी बुद्धि को अपने चरणों में तल्लीन रक्खो। तथा हे मातः! आपके सद्बुद्धि प्रदान से ही इस छोटीसी पुस्तिका रूप उपहार को आपकी भेट में समर्पित करता हूँ तथा क्लेशान्वित भाई बहिनों के लिए यह "विधवाविश्रान्ति" नामक पुस्तक मन विश्रान्ति के लिए उचित होने से यथा नाम तथा गुणवाली पुस्तक लिखी है। जिज्ञासु जन समझें कि इस पुस्तक में मैंने तीन महात्माओं के रूप में उत्तम, मध्यम, अवर यह तीन अन्तः करण की वृत्तियां प्रकाशित की हैं और विश्रान्ति नामक देवी यह शुद्ध दैविक गुणों से युक्त देवी शक्ति वर्णित की है। अतः पढ़ते हुए भक्तजन रोचक भाव में शिक्षा लें और विषय को समझें और स्वरूप को समझते हुए परमार्थिक लाभ उठायें, अन्यथा स्थूल दृष्टि वाले यह भी समझ सकते हैं कि यह विश्रान्ति नाम की कोई कन्या है और तीन महात्मा जो आधुनिक रूप के हैं।

यथा किञ्चित् समर्पणमस्तु।

विधवा विश्रान्ति

प्रश्न–विधवाओं की विश्रान्ति का साधन क्या है, और नङ्गे रहने से क्या वैराग्यवान तथा त्यागी जाना जाता है ?

उत्तर–जाड़े का समय है शिशिर ऋतु है, प्रातः काल सूर्यदेव उदय होने वाले हैं, एक बड़ा नगर दिखाई दे रहा है जिसका नाम वर्तमान है, जिसके नवद्वार हैं, जिसमें एक लड़की रहती है । विवेकी वैराग्यवान महात्मा की सङ्गति करके हुआ हैं। अपने स्वरूप का बोध तथा निवृत हो गई है देह अध्यास पूर्वक जगत प्रपंच की वासना से जिसकी, ऐसी एक द्विज कन्या आयु तीस–पतीस के लगभग है । कैसी वह लड़की है ? सम्यक् अपरोक्ष वैराग्य पूर्वक ज्ञानाग्नि करके अच्छे प्रकार से दग्ध हो गया है, स्थूल तथा सूक्ष्म अभिमान जिसका, तथा अनुभव हुआ है, अपरोक्ष ब्रह्मात्मा अभिन्न स्वरूप जिसको । किसी कारण वश यह लड़की विधवा

हो गई थी, किसी पुण्य के प्रताप से सत्सङ्गति करके महानभाव को प्राप्त हुई हैं। क्योंकि कर्मों की गति विचित्र है। बड़े २ शास्त्र वेत्ताओं को तथा योगियों को जो पद नहीं मिलता वह पद इसको मिल गया। ऐसी ब्रह्मज्ञा कन्या ने एक साधु को अपने मकान के सामने जाते देखा। वह अपने मकान के ऊपर के भाग से अपने दरवाजे पर आ गई।

इसके मकान के समीप में एक दूसरे मकान में एक महात्मा रहते थे। केवल एक कौपीन से दूसरा वस्त्र नहीं रखते थे। वह विरक्त जो कि देवी के द्वार से होकर गये थे कौपीन वाले महात्मा से बोले कि महात्मा जी, कहो क्या हाल है? जाड़ा लगता है या नहीं? रात्री कैसी कटती है? यह महीना माघ का है। महात्मा जाड़ेके मारे कांप रहे थे, और सूर्य के उदय होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। यह कोई नियम ही है कि जो अपने को ब्रह्म तथा जगत से भिन्न जानता है और जो शरीर का अभिमान उठाता हैं उसको यह सर्दी गरमी, मान, अपमान, निन्दा, स्तुति बहुत नाच नचाते

हैं। किंवा बहुत कष्ट देते हैं अर्थात् भेद दृष्टि महान दुःखदाई है। इतने शब्द सुनकर लड़की ने आकर कहा कि महाराज ! इनका हाल मुझसे सुनिये, यह नहीं बतलायेंगे। महाराज ! मैं मिथ्या नहीं कहूंगी। यदि मैं इनके विषय में मिथ्या कहूं तौ वे पाप या दोष मेरे को लगें जो पाप या दोष इन प्राणियों को लगते हैं–

(१) जो गऊ को डंडा से ताड़ना करते हैं, (२) दूसरे वे जो बैलों को लोहे की नोक से गोदते हैं, (३) वे जो गऊ का दूध बच्चे को आधा न देकर सब निकाल लेते हैं, (४) वे जो प्राणी धोबी के यहां के धुले हुए कपड़ों को दोबारा न धोकर नील वाले कपड़े धारण कर लेते हैं, (५) पांच वे जो अन्त्यज जाति के अर्थात् चमार, भङ्गी, मुसलमान, धोबी, तैली, गडरियों के स्त्री पुरुषों से स्पर्श करते कराते रहते हैं, किंवा उनके साथ खान पान करते हैं, (६) छटे वे जो द्विज जाति के मनुष्य जूता पहिने तथा बिना हाथ पैर शुद्ध किए भोजन कर लेते हैं, (७) सातवें वे जो मनुष्य वलि वैश्व कर्म किये बिना किंवा दूसरों को बिना दिये स्वयं खा लेते हैं।

(८) आठवें वे जो पुत्र तथा पुत्रियों के बदले द्रव्य ग्रहण करते हैं, (९) नवमें वे जो विधवा कन्या का विवाह करते या विवाह का विचार करते हैं, (१०) दसवें वे जो विधवा कन्या के विवाह की अनुमति देते हैं, (११) वे कि जो मनुष्य मूछों को मूण्डते हैं, (१२) बारहवें वे जो ब्राह्मण जाति की निन्दा करते हैं, (१३) तेहरवें वे जो अभ्यागतों को या आये हुए दरवाजे पर भिखारी को धिक्कारते हैं, (१४) चौदहवें वे जो कुत्तों को पालते या उनसे स्पर्श करते कराते रहते हैं, (१५) पन्दहरवें वे जो मनुष्य द्विज जातियों को छोड़ कर शूद्र या अन्त्यज जाति को वेद पढ़ाते तथा यज्ञोपवीत कराते हैं, (१६) सोहलवें वे जो ताश व शतरंज आदि से अपना समय बिताते हैं, (१७) सत्रहवें वे जो नदी या गङ्गा जी के पास होते हुए नल या कुवें पर नहाते हैं, (१८) अठाहरवें वे जो स्त्री अपने पति के साथ वादविवाद करती हैं, (१९) उन्नीसवें वे जो स्त्री पति के साथ या अकेली अपना सर खोल कर इधर उधर भ्रमण करती रहती है (२०) बीसवें जो मनुष्य संन्यास लेकर कोट पतलून चमड़े

का जूता धारण करते हैं किंवा द्रव्य संग्रह करने की इच्छा से इधर उधर घूमते हुए व्याख्यान देते फिरते हैं, (२१) इक्कीसवें वे जो ज्ञान के साधन विवेक वैराग्य शम दम आदि को त्यागकर ब्रह्माकार वृत्तिकी आवृत्ति वेदान्त अर्थ का जो चिन्तन है उसको त्याग कर धर्म प्रवृत्ति के कार्यों में प्रवृत्त होते हैं (अर्थात् धर्मशाला पाठशाला गौशाला आदि में) महाराज यह इक्कीस प्रकार के पाप या दोष मेरे को लगें जो मैं मिथ्या कहूं। महराज! ये महात्मा कौपीन के सिवाय दूसरा वस्त्र नहीं रखते रात्री में बन्द मकान में सोते हैं नीचे तो गरम वस्त्र बिछा लेते हैं, परन्तु ओढ़ते नहीं। जब इनको रात्रि में जाड़ा लगता है तो ये मनोराज्य करते हैं कि कल को कपड़ा अवश्य ओढ़ लेंगे। लोगों की प्रशंसा तथा निन्दा से हमें क्या मतलब हम सम्पूर्ण संसार को कदापि भी सन्तुष्ट नहीं कर सकते। विवेकी को अपने हित का मार्ग सोचना चाहिए और किसी की निन्दा स्तुति पर ध्यान न देना चाहिए। रात्री बड़े कष्ट से कटती है। यदि हमारे भक्त लोग रात्रि के बारह बजे तक हमारे पास

न हों तो रात्रि युग के समान कटे और जब दिवस होता है तो ये बाहर धूप में आ जाते हैं। इनको इस प्रकार वस्त्रहीन देखकर इधर उधर से आते हुए मार्गीय मनुष्य इनकी स्तुति करते हैं और कहते हैं देखो! महात्माओं में बड़ी सामर्थ्य होती है, जो ऐसे जाड़े में भी वस्त्र नहीं ओढ़ते।

इस स्तुति को सुनकर महात्मा का रात्री का किया हुआ निश्चय नष्ट हो जाता है। ये रात दिन इसी चक्कर में रहते हैं और शान्ति नहीं पाते हैं, कभी यह सोचते हैं कि जाड़ा गया थोड़े दिन रहे हैं इनके भक्त लोग आकर रात्री में प्रातःकाल सायंकाल कई वार चाय पिलाते हैं और गरम २ पदार्थ खिलाते रहते हैं और सोचते हैं कि महात्मा जी को सर्दी लगकर कहीं नमूनियां न हो जाये, यह वस्त्र न ओढ़ने का फल हुआ, यही विवेक वैराग्य समझकर अपने को कृतकृत्य मान बैठे हैं।

महाराज! मेरे विचार में तो यह एक प्रकार की परतन्त्रता ही है स्वतन्त्र जीवन नहीं। पराधीनता

युक्त निष्कर्मता दुःख मिश्रित ही हैं। यह बन्धन मुक्त जीवन स्वतन्त्र विचार के स्थान नहीं देता। और न इस प्रकार की स्थिति से परमार्थ का ही लाभ होता है प्रत्युत परमार्थ से विमुख रहकर मान बड़ाई में आकर संसार में श्रीमानों के प्रसन्न करके अपनी मान प्रतिष्ठा चाहते हैं। साधनकाल में जिस संसार के अपूर्ण और दुःखरूप नाशवान समझकर छोड़ा था आज उसी संसार से अपने के पूर्ण बनाना चाहते हैं। ये इनके पतन की बात है या उन्नति की ये स्वयं सोचलें। साधु साधक के शीत निवारण वस्त्र और क्षुधा निवारण अन्न लेकर खा लेना चाहिये ऐसा करने से कोई प्रतिग्रह का दोष नहीं लगता प्रतिग्रह का दोष तो अधिक ग्रहण करने से अथवा एक का अन्न खाने से लगता है। परन्तु इतनी बात अवश्य है जो भाग्यशाली महात्मा हैं जिनकी उत्तरोत्तर भूमिकायें बढ़ रही हैं उनको बाह्य इन्द्रियों के विषय की आवश्यकता दिन प्रतिदिन न्यून होती जाती हैं क्योंकि वैराग्य के प्रबल होने से वृत्ति स्वयं अन्तर्मुख रहने लगती है और त्याग स्वयं ही हो जाता है। त्याग किया नहीं जाता एक इन्द्रिय के विषय के त्याग कर

दूसरी इन्द्रिय के विषय में लग जाने से कोई त्याग नहीं कहा जाता। हठ से त्याग करना त्याग नहीं कहा जाता प्रत्युत दूसरे साधकों को भी मार्ग से वंचित करना है।

देवी–महाराज आप कौन हैं?

विरक्त महात्मा बोले मैं विरक्त महात्मा हूं। हम विरक्त महात्मा भोजन पात्र न रखकर केवल हाथ में रोटी लेकर खड़े २ खा लेते हैं। और कई घरों से थोड़ा २ टुकड़ा लेकर निर्वाह कर लेते हैं।

देवी बोली आप बड़े त्यागी महात्मा हैं। आपके त्याग की महिमा श्रुति माता भी कहती लजाती है। थोड़े २ टुकड़े खाने से तो आप भूके ही मरोगे क्योंकि भिक्षुक के लिये तो वेद भगवान सात पांच तथा तीन घरों से रोटी मांगने को कहता हैं। अरे मूर्ख जो ग्रहस्थी एक रोटी लावे भिक्षुक उसमें से एक आधा टुकड़ा लेवे तो वह ग्रहस्थी तेरे को ढोंगी समझेगा। कोई मूर्ख ही तुझे त्यागी महात्मा कहेगा। तू अपनी विरक्ति की महिमा सुन! तेरे मनकी बात मेरे से छिपी नहीं प्रकट ही है। तुम भी माया के अनुगामी हो क्योंकि प्रशंसा चाहते हो। वैसे तो आप हाथ में एक २ टुकड़ा लेकर

और खड़े २ खाते हो परन्तु खड़े २ रोटी खाने वाले के शास्त्र में मूर्ख कहा है। वैसे तो आप विरक्त बनते हो परन्तु आपका यह कमण्डल कैसा फैन्सी है, डण्डा कैसा चमकदार है जिसका मूल्य २) रुपया है, जूता पन्द्रह रुपये का ऊनी वस्त्र जिनकी कीमत ४०) रुपया है। दिन प्रतिदिन कपड़े को साबुन से धोकर बार २ रङ्गते हो। चौथे पांचवें दिन सिर को मुंडवाते रहते हो। केवल हाथ में रोटी लेकर खड़े २ खाकर विरक्त बनते हो और रात्री में नगर का आश्रय लेते हो क्योंकि आपको भय रहता है कि कोई वस्त्रों को चुरा न लेजाय। विरक्त जी महाराज जहां भय है वहां शान्ति तथा सुख कहां ? चिन्ता तो साधु को डस लेती है। यह कोई विरक्त भाव का स्वरूप है ? यह तो केवल ढोंग है।

महात्मा बोले—देवी मैं सर्व त्याग कर विरक्त हुआ हूं इसलिये हाथ में लेकर रोटी खाता हूं और अपने प्रारब्ध को भोगता हूं। क्योंकि विवेकी की चेष्टा प्रारब्ध वश होती है।

देवी बोली ये सब बातें तुम्हारी सुनी हुई हैं अनुभव जन्य नहीं। बड़ा आश्चर्य है कि आकाश भी अपने में

नीलता का अनुभव करे और उसके धोने का प्रयत्न करे। यह तो उसके लिये हंसी की बात है। अरे महात्मन् सारे पद (अर्थात् झगड़े) इह अहङ्कार में ही हैं। देखिये जैसे रस्सी का रूप जान लेने पर सर्प भ्रम नहीं रहता उसी प्रकार अधिष्ठान ब्रह्म को जान लेने पर प्रपंच आदि की सत्ता स्वरूप से नहीं रहती तात्पर्य यह है कि अपने आत्मा को जान लेने पर देहाभिमान नहीं रहता और देहाभिमान न रहने पर जन्म मरण आदि प्रपंच का भय नष्ट हो जाता है। जैसे जाग्रत होने पर स्वप्न प्रपंच नहीं रहता वैसे ही देह आदि असत्य होने पर बोध के पश्चात् प्रारब्ध नहीं रहता। जिस प्रकार स्वप्न शरीर अध्यस्त है उसी प्रकार यह देह भी अध्यस्त है। फिर कहो अध्यस्त का जन्म कैसे हो सकता है और जब जन्म का अभाव हुआ तो फिर शरीर के आश्रय रहने वाला प्रारब्ध कहां ठहर सकता है ? और जो तुम कहो बोधवान के प्रारब्ध का श्रुति कथन क्यों करती है तो उसका उत्तर यह है कि अज्ञानियों को सन्तोष दिलाने के निमित्त श्रुति भगवती प्रारब्ध बताती है।

महात्मा जी ! जब तुम इस अहङ्कार को त्यागोगे तब ही तुम सर्व त्यागी होगे। अथवा विरक्त होगे अन्यथा नहीं। परिछिन्न अहङ्कार करके अर्थात् देहाभिमान जो ग्रहण तथा त्याग किया जाता है वह तो बच्चों का होता है बोधवान पुरुषों का नहीं। विवेकी वैराग्यवान पुरुष तो सदा निष्क्रिय पद में स्थित रहते हैं। अर्थात् कर्तव्य अकर्तव्य के अभिमान से रहित रहते हैं। महात्मा जी ये कर्तव्य अकर्तव्य स्थूल सूक्ष्म शरीर के धर्म हैं, आत्मा के नहीं। यही बोध है। वैसे तो ज्ञान अज्ञान, विद्या अविद्या, प्रवृत्ति निवृत्ति ये तेरे अपने धर्म नहीं परन्तु अविद्या (अज्ञान) के दूर हो जाने पर कल्याण होता है। जैसे सूर्य हर दशा में प्रकाशमान है, परन्तु बादलों के हटने पर ही उसका प्रकाश प्रतीत होता है। उसी प्रकार अज्ञान के दूर होने पर आत्मा का प्रकाश प्रतीत होता है। इस नाम रूप दृश्य प्रपंच से दृष्टि को उठाकर निज स्वरूप में अर्थात् अदृश्य रूप में दृष्टि लगा और बाह्य दृष्टि को त्याग कि मैं बड़ा त्यागी हूं, मैं ज्ञानी हूं। यह ग्रहण त्याग बोध के पश्चात् नहीं रहता। दृश्यमान अदृश्यमान अर्थात्

दीखने वाले न दीखने वाले का भेद जाता रहेगा।

महात्मा विरक्त देवी की बात सुनकर हंस पड़े।

देवी बोली महाराज तुम्हारे हंसने का कारण मैं जानती हूं तुमने मुझको शरीर दृष्टि करके तुच्छ जाना कि लड़की स्त्री जाति लेकर कैसी बातें करती है। महाराज! जिनको परंतत्व की प्राप्ति हुई है उनकी विषय दृष्टि नहीं होती अर्थात् राग द्वेष युक्त नहीं होती। महाराज मेरी दृष्टि में तो मेरा शरीर विचार रूपी अग्नि करके भस्म होगया है जैसे अश्वत्थामा के बाण से अर्जुन का रथ हो चुका था परन्तु यह बात भी भगवान कृष्ण की ही दृष्टि में थी अर्जुन तथा अन्य मनुष्यों की दृष्टि में रथ वैसा ही दीखता था।

जैसे भित्ति के चित्र नाना प्रकार के देखने मात्र दृष्टि प्रसाद रूप ही होते हैं वास्तव में कुछ नहीं फिर भी अबोध बच्चों की दृष्टि में भिन्न भिन्न रङ्ग विरङ्ग आकार अर्थात् मूर्तियां सच्ची प्रतीत होती हैं, परन्तु रङ्ग और भित्ति को जानने वाले मनुष्यों को सच्चे प्रतीत नहीं होते। जैसे गौ के के देखने में मनुष्यों की भिन्न २ दृष्टि होती हैं। चमार की दृष्टि तो चमड़े पर जाती है,

और कसाई की दृष्टि गौ के मांस पर/गूजर की दृष्टि उसके दूध पर, तथा द्विज जाति के मनुष्यों की दृष्टि गौ पूजन पर जाती है, और आत्मवेत्ता ब्रह्मज्ञानी तो गौ को अपना ही स्वरूप जानते हैं किंवा ब्रह्मरूप देखते हैं। इसी प्रकार इस स्वप्नवत् मेरे शरीर को कोई तो घृणित दृष्टि से देखते हैं कोई माता, कोई भगिनी, कोई बेटी, कोई बूआ आदि करके मानते तथा जानते हैं।

वैराग्यवान् मनुष्य मांस, हड्डी, चर्म, मल मूत्र से युक्त शरीर को माया का कार्य पञ्च भूत रूप मानते तथा जानते हैं, और ब्रह्मवेत्ता तो मुझको आत्मरूप ही जानते हैं। ये सब दृष्टि भेद ही तो है, इसके सिवाय और कुछ नहीं, परन्तु मुझको तो अस्ति भाति तथा प्रियरूप आत्म दृष्टि से इस शरीर सहित सारे नामरूप प्रपञ्च का अत्यन्त अभाव हैं। केवल जीवों के मन के स्फुरण मात्र में ही मेरा शरीर है अपनी दृष्टि से नहीं है।

विरक्त जी! जैसे स्वप्न पुरुषों की निद्रा करके स्वप्न का जगत दीखता हैं, परन्तु स्वप्न दृष्टा अर्थात्

स्वप्न को देखने वाले की दृष्टि से स्वप्न जगत का अत्यन्त अभाव है। इससे मैं भोली भाली गौ तुम्हारे पास महात्मा जानकर आई हूँ। तुम लोग शरीर दृष्टि करके मेरे से घृणा न करो। महाराज! शरीर तो सब के माया का कार्य होने से माया रूप ही है अर्थात् मिथ्या है क्योंकि कार्य जो है वह कारण रूप ही होता है। कार्य की सत्ता कारण से पृथक् नहीं। जैसे मिट्टी का घड़ा मिट्टी से भिन्न नहीं होता इत्यादि। माया स्त्री लिङ्ग है अर्थात् स्त्री का वाचक है जो शरीर अभिमानी बोध शून्य है, चाहे पण्डित हो चाहे मूर्ख हों वे सबके सब स्त्री ही हैं, किंवा शरीर सबके पञ्च भौतिक अर्थात् आकाश वायु, अग्नि, जल, मिट्टी, मल मूत्र से युक्त सबके एक जैसे ही हैं।

महाराज! जो महात्मा होता है उसकी तो पवित्र दृष्टि अर्थात् शुद्ध विचार होते हैं, और जो असन्त होते हैं उनकी अपवित्र अर्थात् मलिन दृष्टि होती है। हे महाराज! स्त्री पुरुष आदि नाम तो शरीर के ही हैं आत्मा के नहीं मैं तो मन वाणी से परे सबका अधिष्ठान

सबका पोषक अर्थात् अन्तःकरण इन्द्रिय विषय का प्रकाशक सदा अपरोक्ष साक्षी सत् , चित् , घन, आनन्द स्वरूप हूं। अस्तु मैं नहीं जानती थी कि मांस चमड़े को दृष्टि करके सन्त महात्मा मुझसे घृणा करेंगे। क्यों कि महात्मा तो वही हैं जो आप सहित इस सर्व नाम रूप प्रपञ्च को ब्रह्मस्वरूप जाने अर्थात् अस्ति भांति प्रिय रूप से देखे।

महाराज! जिस मनुष्य में शोक, मोह, काम, क्रोध आदि वर्तमान हों और जिसने उस परम् तत्व को नहीं प्राप्त किया हो अर्थात् शरीर का अभिमान करने वाला हो वही स्त्री है। यदि किसी आकार में बाहर स्त्री के चिन्ह देखने में आवें परन्तु उसमें पुरुष का अन्तरङ्ग लक्षण विवेक, वैराग्य सहित तत्वज्ञान वर्तमान हो वह स्त्री नहीं बल्कि पुरुष ही है। क्योंकि बाहर के चिन्हों से अन्तरङ्ग के चिन्ह प्रधान होतेहैं। जिन मनुष्यों के शरीर में डाढ़ी-मूछ आदि पुरुष के बाहर के चिन्ह तो वर्तमान हों परन्तु उनमें पुरुषके अन्तरङ्ग मुख्य लक्षण विवेक, वैराग्य, तत्वज्ञान नहीं हों अर्थात् देहाभिमानी हों किंवा उनके कार्यों का अभिमान उठ कर माया के

अनुसारी हो या उनमें स्त्रियों का अन्तरङ्ग प्रधान लक्षण शोक, मोह, काम आदि विद्यमान हों उन मनुष्यों को पुरुष न कह कर स्त्री कहना उचित ही है अनुचित नहीं।

विरक्त महात्मा बोले—देवि ! तेरा गुरु कौन है ?

देवी बोली—महाराज ! 'गु' नाम अज्ञान का है या अन्धकार का है किंवा इन्द्रियों का है। 'रु' नाम प्रकाश का है, अतः मैं सब का गुरु हूं। आप मेरे निश्चय से पूछें तो मैं सत्य कहती हूं। मैं अपने को गुरु और अपने से भिन्न दृष्य प्रपञ्च को शिष्य जानती हूं। मुझसे हित यह समस्त जगत् आस्ति भाति प्रिय रूप है। न कोई गुरु है, न कोई शिष्य।

महात्मा बोले—देवि ! इससे तो त्रिपुटी अर्थात् ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय आत्मरूप ही हुई क्योंकि चैतन्य आत्मा से भिन्न त्रिपुटी का आधार कोई दूसरा नहीं। आप ही अपने को देखता है, आप ही अपने को सुनता है अर्थात् त्रिपुटी आप ही है।

देवी बोली—यह बात तुम्हारी हंसने योग्य है। जो एक आत्मा में अनेक कल्पना उठते हो/ तथा भिन्न,
उठाते हो

अभिन्न जानते हो कभी तुमने अपने शरीर को अपने से भिन्न अभिन्न जाना है ? देखो अपने मन में संकोच नहीं करना कि यह स्त्री जाति की लड़की हम को अनोपदेश करती है। महाराज ! जहां विवेकी महात्मा पुरुष इकट्ठे होते हैं अर्थात् समागम होता है वहां स्वा- भाविक हीं ब्रह्म विचार द्वारा वाक्य विलास मनोरञ्जन हुआ ही करता हैं। परस्पर मिलकर सांसारिक बातचीत निन्दा--स्तुति तो अविवेकी पुरुष ही किया करते हैं विचारवान नहीं। अस्तु, महाराज ! यह याद रखना चाहिये कि भेददृष्टि रखने वाला प्राणी कभी भी सुखी नहीं होता। क्योंकि पूर्व जन्मों में सूर्य चन्द्रमा आदि ने भी भेद दृष्टि की थी जिसके कारण उनको अब तक भी स्वतन्त्रता नहीं मिली हर समय इधर उधर भागे २ फिरते हैं। अस्तु, जैसे आकाश अचल होता हुआ भी चल अचल वायु के जो धर्म हैं उन धर्मों को अपना माने सो आकाश का भ्रम है। भ्रमवान् पुरुष कभी भी सुख से जीवन नहीं व्यतीत करते अर्थात् शान्ति नहीं पाते। उसी प्रकार मुझ निर्विकार, निर्विकल्प, पूर्ण चेतन आत्मा को मन के धर्म, समाधि, असमाधि चञ्च-

लता होने से सुख तथा दुःख स्पर्श नहीं करते। मन के धर्म मन को ही सुख तथा दुःख देते हैं मुझ निरपराध निष्कर्तव्य को नहीं। यह अनीति नहीं हो सकती कि शराब, मांस, विष, अमृत खाए कोई और उसका गुण दोष चढ़े दूसरे को।

महाराज विचार शील मनुष्यों की बुद्धि उलटी नहीं होती और बिना विपरीत बुद्धि के विपरीत व्यवहार नहीं होता उलटा पर धर्म दुःख का देने वाला होता है। स्वधर्म सुख का हेतु हैं। यह सब शास्त्रों का सिद्धान्त है इससे मैं अपने नित्य चित सुख स्वरूप में ही स्थित हूँ, पर धर्म मन के फुरने तथा अफुरने से मुझको क्या ?

विरक्त महात्मा बोले-हे देवी तूने ऐसा कौनसा पुण्य कर्म किया है जिससे तू इतनी बोधवान हुई और कौनसा पाप कर्म किया जो तुझको स्त्री का शरीर मिला जो कि पाप कर्मों का फल है, और तेरा विवाह हुआ या नहीं ?

देवी बोली—महाराज मैं पूर्व जन्म में एक ब्रह्मचारी था। पश्चात् कांशी में एक दण्डी सन्यासी बन गया

कुछ काल के पश्चात् हमारे गुरू का शरीर नष्ट होगया मैं गुरु की जगह महन्त बनाया गया अब क्या था "एक तो गिलोय स्वयं कड़वी दूजे नीम चढ़ी" एक तो जातीय अभिमान दूसरे दण्ड का अभिमान तीसरे महन्ती का अधिकार यह त्रिदोष होगया। इसी त्रिदोष के नशे में दण्ड रहित सन्यासी तथा स्त्री जाति से घृणा करता था* मन से विषयों का ध्यान करूं, और बाहर से इन्द्रियों को रोकूं, परन्तु मेरा मन विषयों में चला ही जाता था। शरीर को ऊनी तथा रेशमी वस्त्रसे सुसज्जित रखता था, और नित्य तैल साबुन तथा सुगन्धित द्रव्यों से स्नान करता था और शरीर की पुष्टि के लिये अच्छे अच्छे पदार्थ बार २ खाता था, तथा रक्षा के लिये औषधियों का सेवन करता था, बालों को न कटाकर दाढ़ी मूछ को दूसरे दिन प्रातः काल उठकर मूंडता था महाराज! सब देहाभिमान करके मैं माया का ही स्वरूप बन गया। इसी कारण से मुझको स्त्री जाति का जन्म मिला।

---

* परन्तु महन्त होता हुआ भी निष्काम होकर विष्णु भगवान की भक्ति करता था।

जो मनुष्य ऐसा बरतेंगे वे सब भविष्य में स्त्री बनेंगे, और महाराज! उस निष्काम भक्ति से किसी एक महा वैराग्यवान महात्मा के दर्शन होगए। उन्होंने मुझसे घृणा नहीं की और मुझको अपनी शरण में लेकर इस संसार सागर से मुझ डूबी हुई को निकाल लिया। अस्तु, हे महाराज! मैं मूर्खता से, पूर्व काल में हाड, मांस चर्म मल मूत्र के समुदाय शरीर को और शुद्ध निर्विकार असङ्ग आत्मा को एक रूप जानती तथा मानती थी। इसी से मेरे माता पिता ने एक पुरुष से मेरा विवाह कर दिया। पतिदेव का कुछ काल पश्चात् स्वर्ग वास हुआ और मैंने अपने वैधव्य धर्म की रक्षा करते हुए पिछले संस्कारों के वश होकर परंपिता पतितपावन धर्मरक्षक संकटमोचन भगवान् कृष्ण के आश्रय में रहकर अपने को स्त्री समझती हुई वैधव्य धर्म की रक्षा की। उन महात्माजी को मुझपर बड़ी दया आई और उन्होंने अपने मुखारविन्द से इक्कीस साधन मेरे को बतलाए और कहा—इन साधनों के पालन करने से तुमको कुछ काल के पश्चात् अपने स्वरूप का बोध हो जायगा। अस्तु, महाराज! अब उन्हीं की कृपा से देहाभिमान

का बोझा शिर पर से उतर गया और मैं शांत होगई अर्थात् सांसारिक बाधाओं से मैं निवृत्त हो गई। वे इक्कीस साधन ये निम्नलिखित हैं :—

१–विधवा स्त्री को अपने दोनों कुलों में रहना चाहिये अर्थात् पतिकुल और मातृकुल में।

२–शरीर के किसी भी अङ्ग में भूषण धारण नहीं करना चाहिये।

३–सफेद चार धोती कम से कम दामों की और चार कुर्ति एक वर्ष में लेनी चाहिये।

४–उन कपड़ों को धोबी से न धुलाकर एक महीने में चार पांच बार साबुन द्वारा अपने घर ही शुद्ध कर लेने चाहियें।

५–सिर के बालों को एक वर्ष में चार छ बार कटवा देना चाहिये, यदि रखने का भाव ही हो तो तैल और कंघी का प्रयोग नहीं करना चाहिये बल्कि प्रतिदिन स्नान के समय केवल जल से ही धो डालना चाहिये।

६–शरीर में तैल तथा साबुन न लगाना चाहिये और न दर्पण में ही अपना मुख देखना चाहिये।

७-आंखों में अञ्जन न लगाकर प्रत्युत मिट्टी के पात्र का वासी जल लेकर आंखों को प्रातःकाल शुद्ध कर लेना चाहिये।

(८) बाजार की मिठाई, चाट, बर्फ पान, चाय न खाना पीना चाहिये और दूध तो रोग के बिना कभी भी नहीं पीना चाहिये।

(९) एक वर्ष में दो चान्द्रायण व्रत, मार्गशीर्ष और वैशाख में कर लेने चाहियें और एक वर्ष की चौबीस एकादशी कर लेनी चाहियें। एकादशी में ऋतु के फल किंवा दूध या टएठाई ग्रहण करले।

(१०) किसी के बच्चे को गोद में लेकर नहीं हिलाना चाहिये।

(११) किसी से वाद-विवाद न करते हुए बिना बोले किसी से न बोलना चाहिये।

(१२) घर के कार्य रोटी, सिलाई, चरखा आदि से अपने विकृत मन को शान्त कर लेना चाहिये।

(१३) स्वतन्त्र रूप से अन्य स्त्री पुरुषों के साथ न जाकर अपने बान्धवों के साथ तीर्थयात्रा किंवा कथा-सत्सङ्ग में जाना चाहिये।

(१४) कहीं खेल तमाशा तथा सिनेमा आदि में भी नहीं जाना चाहिये।

(१५) रात्री में अपने पास किसी को भी न रहने देना चाहिये।

(१६) घर में यदि दैववश रोगी हो जाय तो तन मन से सेवा करनी चाहिये।

(१७) प्रातः काल चार बजे और सायङ्काल १० बजे एकान्त स्थान में बैठ कर ईश्वर का स्मरण, ध्यान तथा प्राणायाम या नाम जाप कर लेना चाहिये।

(१८) प्रातःकाल उठकर प्रथम घर को शुद्ध करके शौच, स्नान आदि कार्य से निवृत्त होकर किसी धर्म-पुस्तक का दो घण्टे * स्वाध्याय कर लेना चाहिये। खाना इतना खाना चाहिये कि जो खाने की रुचि बनी रहे।

(१९) अपने कमरे में किसी का भी चित्र नहीं रखना चाहिये और स्वच्छता के सिवाय दिखावटी भाव के लिये कोई विशेष रचना नहीं करनी चाहिये।

नोट—ध्यान रहे कि स्त्रियों के लिये रामायण, गीता; सुखसागर आदि तथा महात्मा आदि सन्त जनों का जीवन चरित स्वाध्याय शब्द में प्रयुक्त हैं।

(२०) यदि दैव या अदृष्ट सहायक हो तो वेदान्त की प्रक्रिया का कोई ग्रन्थ बान्धवों की आज्ञानुसार किसी नीतिज्ञ पुरुष से पढ़ लेना चाहिये।

(२१) किसी की निन्दा स्तुति न करते हुए उदासीन भाव से दिन रात्रि में १०८ माला किसी एक नाम की पूरी कर लेनी चाहियें।

उन महात्मा ने कहा कि इन सब नियमों के पालन करने से तेरी बुद्धि शुद्ध हो जायगी और वैराग्य पूर्वक तप द्वारा ही अपना जीवन-निर्वाह करने से तुम सन्यासगति को प्राप्त हो जाओगी क्योंकि जहां यम, नियम आदि साधनों की अवहेलना की जाती है वहां इन्द्रियां स्वतन्त्र वर्तने लगती हैं और उत्तम अधमों में व्यवहार होने लगते हैं और उत्तम और मलिन जातियां आपस में मिल जुल जाती हैं जो उत्तम जातियों के धर्म स्नान, सन्ध्या, तर्पण, ब्राह्मणों का भोजन सत्कार सभी बन्द होजाते हैं। वहां कौन किसे धर्ममार्ग पर लगाए। जैसे सर्प पदतल के नखाग्र में काटे तो उसका विष सारे शरीर में फैल जाता है उसी प्रकार जो साधक शम,

दम आदि साधनों से रहित होकर लौकिक श्रृङ्खलाबद्ध प्रवृत्ति को किंवा वैदिक क्रियाओं का लोप करता है तो उसके पाप से त्रिलोकी का वातावरण सन जाता है।

अब महाराज! मैं उन महात्मा जी की कृपा से कल्पित बन्ध-मोक्ष तथा जन्म-मरण आदि सम्पूर्ण सन्सार के धर्मों से रहित होकर अपने को सच्चित् आनन्द रूप आत्मा जानती हूं और पूर्व की अज्ञात अवस्था को स्मरण करके हंसती हूं कि अहो! मैं अपने को क्या जानती और क्या मानती थी और क्या हो गई। हे लीलाधारी! हे मायाप्रपञ्चकारी! अखिल पापसंहारी! तेरी माया जानी नहीं जाती। हे गुरुदेव! आपको धन्य है। हे प्रभो! तेरी माया को विद्वानों ने 'अघटनाघटितपटीयसी' जो कहा है वह उचित ही है अर्थात् तेरी माया सत् को असत् और असत् को सत् करके दिखाती है। अतः महाराज! भेददृष्टि करके देहाभिमान के कारण मुझको यह स्त्री का शरीर प्राप्त हुआ है। जो ऐसी दृष्टि करेगा वह स्त्री जन्म को प्राप्त होगा इसमें कोई सन्देह-लेश नहीं और उन सब की यही दशा होगी।

विरक्त महात्मा बोले-- देवि ! तू विधवा किस कारण से होगई ।

देवी बोली--मैं विधवा इस कारण से हो गई कि मैं पूर्व जन्म में पुलिस आफ़िसर था । एक मनुष्य बहुत गरीब क्षुधा पीड़ित होता हुआ मेरे पास आया और कहा मैं भूखा हूं कुछ खाने को दो । मैंने अपने पुलिस स्वभाव के वश उसको बहुत मारा पीटा इससे वह मृत्यु को प्राप्त होगया । इस जन्म में वही मनुष्य मेरा पति बना और उसने इस जन्म में मुझसे बदला लिया ।

महात्मा बोले हे देवी ! क्या तेरे को पूर्व जन्मों की भी याद है ?

देवी बोली--बहुत जन्मों की याद है परन्तु यह सब भ्रम था । पुण्यार्थ तो मनुष्य का परंपिता परमात्मा की अनन्य शारण्य गति में है न कि पूर्व जन्मों का हाल जानने में । पूर्व जन्मों का हाल जाना तो क्या, नहीं जाना तो क्या ? जैसे मनुष्य निद्रावश स्वप्न को सत् माने तो वह सब भ्रम ही है । उसी प्रकार स्वप्न दृष्टा

जागने पर अपने को सत पाता है। स्वप्न के दीखने वाले पदार्थों को असत् जानता है अतः मैंने जो कुछ भी देखा वह सब भ्रम ही था। वैसे तो मैंने अनेक भ्रम देखे कुछ तुमको सुनाती हूं, जो कि आश्चर्य रूप थे। एक बार मैं बन्दरिया बन गई, फिर मरकर एक ऋषि की कन्या होगई, फिर मरकर उनकी कुटिया की लता बन गई, और फिर कुतिया बन गई। फिर एक बार मैं राजा बन गई, और उसके बाद मरकर रानी बन गई। महाराज! क्या कहूं। मैंने अनेक भ्रम देखे परन्तु शान्ति कहीं नहीं प्राप्त हुई। महाराज! शान्ति तो अपने स्वरूप को जानने से मिलती है, न कि विषयों के उपभोग से।

एक जन्म की गाथा और सुनाती हूं। एक जन्म में मैं एक धनवान ब्राह्मण था और पढ़ा लिखा भी था, न/जीविका मेरी वैश्य वृत्ति से होती थी मैंने वाणी मात्र से भी आतिथ्य सत्कार नहीं करता था, और नाहीं देवताओं को हवि देता था नाहीं पितरों को मानता था, उस अपमान तथा तिरस्कार करने से मेरा जो कुछ

पिछला पुण्य था वह सब नष्ट होगया । अस्तु इसी कारण से जो धन संग्रह किया था वह भी नष्ट होगया। धन के नष्ट होने तथा स्वजनों के अपमानित होने से मैं शोक मोह में डूबा रहता, पश्चाताप करता और कोसता था कि हाय दैव ! हाय भाग्य ! तूने अच्छा नहीं किया। देखो ! मैंने जिस धन को संग्रह किया और उसकी रक्षा करने में अपना सारा समय नष्ट किया, अपने भाई बन्धुओं से विमुख रहा, माता पिता को तुच्छ समझा, जी तोड़कर परिश्रम किया वह धन न तो धर्म में ही लगा और न मैंने उसका उपभोग ही किया । कृपण मनुष्य को धन से सुख तथा शान्ति नहीं मिला करती इस संसार में तो धन के जोड़ने तथा रक्षा करने में ही धनवानों को चिन्ता लगी रहती है और मरने पर वह नरक का कारण होता है । जैसे किञ्चित भी कुष्ट सारे सुन्दर शरीर के स्वरूप को कुरूप बना देता है, उसी प्रकार किञ्चित मात्र भी लोभ गुणवानों को कलङ्कित कर देता है । अस्तु ।

महाराज ! जिनकी भी संसार में बुराइयां हैं वह
जितने

सब धन तथा लोभ के कारण ही होती हैं। अतः जिसको मोक्ष की इच्छा हो किंवा शान्ति प्राप्त करना हो, वह पुरुष अर्थ रूप अनर्थ को दूर से ही त्याग करे। महा-राज! मैंने सोचा अरे? मैं कितना मूर्ख विचार रहित मनुष्य हूं जो धन नष्ट होने पर भी चौथी अवस्था आने पर तथा अन्य नाना आपत्तियों के शिर पर सवार होने पर भी भगवान कृष्ण की शरण नहीं लेता हूं। मैंने सोचा कि तेरे ऊपर भगवान प्रसन्न हुए हैं जो धन नष्ट हुआ और संसार सागर से पार होने के लिये विवेक वैराग्य का एक अङ्कुर उत्पन्न हुआ है। ऐसा विचार करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ। वही मैं दण्डी सन्यासी हुआ।

महात्मा बोले—कि ये पूर्व जन्मों का वृतान्त तेरे को कैसे ज्ञात हुआ।

देवी बोली—मेरे जो सास श्वसुर हैं वह बहुत बुड्ढे हैं उनकी सेवा से मुझको यह वृत्तान्त पूर्वजन्म का ज्ञात हुआ।

विरक्त महात्मा बोले—कि देवी तुम सन्यास ग्रहण

क्यों नहीं कर लेतीं उससे दूसरे प्राणियों का उपकार होगा।

विश्रान्ति देवी बोली—महाराज! देहभिमान रूपी विडाल के दूर करने के लिये सन्यास किया जाता है लिया नहीं जाता। उलटा महान देह अभिमान रूपी सिंह को अन्दर बाड़ लेना कोई सन्यास की गति नहीं और नाही कोई विद्वता है बल्कि अत्यन्त मूर्खता है और नाही ऐसे सन्यास से लाभ है कि स्त्री पुत्र माता पिता भाई बहिन आदि को दुःख निमग्न छोड़ कर आप सुख से जीवन व्यतीत करे। सम्यक विचारवान पक्षपात रहित सन्यासी तों कोई २ होते हैं केवल दण्ड आदि धारण करने से किंवा लाल वस्त्र करने से परम् गति थोड़े ही मिलती है और नाही स्त्रियों को सन्यास का अधिकार है। महाराज सन्यास कहते हैं त्याग को जिसमें तीनों शरीरों का त्याग हैं वही सन्यास कहलाता है। परोपकार की बात यह है कि स्वार्थ साधन ही मनुष्य जीवन का परम् कर्तव्य है क्योंकि दूसरों के कार्यों की तो कभी भी पूर्ति नहीं होंती अर्थात् स्वार्थ सिद्धि ही

परोपकार है। स्वप्न का देखने वाला कितना भी प्रयत्न करे तो भी कितने स्वप्न पुरुषों का कल्याण कर सकेगा। उन सबके कल्याण का एक मात्र उपाय तो बस यही है कि वह स्वयं जाग जाय। इस प्रकार संसार का परं कल्याण अपने ही कल्याण पर निर्भर है।

संसार को दृष्टि से देखा कि जब तक तुम स्वयं कृतकृत्य नहीं हो जाते अर्थात् निरिच्छित निष्काम निरभिमान, तब तक दूसरों के कल्याण का ढोंग ही बांधते हो। जो मनुष्य सम्पूर्ण संसार को अपनी ही आत्मा जानेगा उसकी दृष्टि में लोक कल्याण नहीं उसके तो दर्शन मात्र से कल्याण होजाता है। महाराज़ घर २ से भीख मांगने तथा पुरुषों में रहन सहन से स्त्रियां दूषित होजाती हैं। आपने देखा नहीं, तीर्थ में भीख मांगने वाली स्त्रियों की क्या दशा है? भीख मांगने से तृष्णा, लोभ आदि का परिवार बढ़ता है। इस समय तो महात्मा लोग भी बहुत से ऐसे हैं जो रोटी मांगना अच्छा नहीं समझते। रुपया पैसा जोड़ कर अपने हाथ से ही रोटी बनाते खाते हैं। आप बिना

विचारे कहने लगे, अस्तु इसलिये महाराज ! इस देह आदि के अभिमान निवारण करने के लिये अपने स्वरूप का बोध रूपी दण्ड ही धारण करो । उलटा अहं मम रूपी अभिमान न करो और न किसी से घृणा करो । महात्मा तो निरपेक्ष होते हैं । वैराग्य पूर्वक आत्मादर्शी ही दण्डी सन्यासी है क्योंकि ज्ञान रूप दण्ड उनके पास होने से । महाराज ! जिस दण्ड से मनका निग्रह नहीं हो वह दण्ड व्यर्थ ही है । जिस किसी को पुण्य के द्वारा धर्म पूर्वक सम्यक आत्मा ज्ञान हुआ है, ऐसे सज्जन पुरुषों के गुप्त और आत्म गुणों को न जानकर, न अपनाकर, जो उनकी शरण में न जायगा केवल सन्यास ग्रहण मात्र से तथा जाति का मिथ्या अभिमान सिर पर रखकर उनका तिरस्कार करेगा, किंवा तुच्छ दृष्टि करेगा, वह परं दुःख का भागी होगा ।

विरक्त जी ! मैं आपसे इन नंगे बाबा की बात कहने आई थी आपने इनसे पूछा था कि जाड़ा लगता है या नहीं, रात्रि कैसे कटती है ? बीच में वाग् विलास और मनोरञ्जन भी होगया । विचारवान् को अति किसी

बात की भी नहीं करनी चाहिये। जिन २ कार्यों से पाप रूप दुःख वर्तमान काल में किंवा भविष्य काल में हो उन २ कार्यों का ही त्याग करना रूप वैराग्य है, अस्तु। सतोगुण के कार्य्य चित्त की एकाग्रता पूर्वक जो मन, वाणी तथा शरीर से लौकिक सुख किंवा पारलौकिक सुख के लिये शुभ कार्य्य किये जाते हैं वही अत्यन्त फल वाले होते हैं। अशास्त्रीय साधन से तो शरीर को अत्यन्य कष्ट देने से चित्त एकाग्र नहीं रहता जो कि सतोगुण का कार्य्य है, बल्कि तमोगुण का कार्य्य–काम, क्रोध, आलस्य, अभिमान तथा अहङ्कार आदि का ही परिवार बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है क्योंकि दुःख–पीड़ित काल में दुःख ही सन्मुख रहता है सुख नहीं, जो कि सतोगुण करके होता है क्योंकि मन का स्वभाव है। जो २ वस्तु मन के सन्मुख होती है मन उसी के आकार का होजाता है इसी कारण दुःख पीड़ित वैराग्य, तपश्चर्या नहीं करनी चाहिये और यह भी नहीं कि हम अत्यन्त पीड़ित होकर ही भगवान को स्मरण कर सकते हैं किंवा मुक्त हो सकते हैं किंवा ज्ञान के साधनों को प्राप्त कर

सकते हैं या अत्यन्त पीड़ित होकर ही हमारे त्याग को भगवान् देख कर प्रसन्न होंगे और जो सुख पूर्वक भगवान् को स्मरण करेंगे तो भगवान् हमसे अप्रसन्न होंगे।

महाराज! ईश्वर तो प्रेम चाहता है न कि बाहर का ढोंग या बनावटी स्वांग। दूसरों को अपना वैराग्य तपश्चर्या दिखाना और अपने आप दुःखित रहना, यह भी कोई त्याग है? एक इन्द्रिय के विषय को त्यागकर दूसरी इन्द्रियों के विषय के आधीन हो जाना, यह भी कोई जितेन्द्रियपन है? बल्कि दूसरों की परतन्त्रता में आजाना यह बोधहीन मूर्खों का लक्षण है। बोधवानों की यह दृष्टि नहीं होती। साधुओं के लिये एक कन्था, क्षो कौपीन रखते हुए वैराग्य नष्ट नहीं होता किंवा हाथ में लेकर खड़े २ रोटी खाने मात्र से वैराग्य सिद्ध नहीं होता और न परंपद मिलता प्रत्युत गृहस्थियों से अधिक सम्पर्क करके अपनी आवश्यकताओं को अधिक बढ़ा लेना और अपना स्वतन्त्र जीवन परतन्त्रता के सांचे में ढाल देना सिवाय प्रमाद के और क्या कहा

जायगा ? गृहस्थियों के द्वार पर बार २ जाने से क्या राग, द्वेष न उत्पन्न होगा ? बल्कि प्रतिग्रह का दोष लगकर बुद्धि मलीन हो जायगी । अस्तु, सरदी दूर करने के लिये आप जो बार २ गरम चाय पीते किंवा गरम वस्तुओं का सेवन करते हो यदि एक कन्था रख लो तो क्या अपमान होजायगा या राग माना जायगा ? महाराज ! मर्यादा से अधिक रखना ही राग है या चित्त की समाहित वृत्तियों में विक्षेप का कारण है । दोष तो कामनाओं को बढ़ाकर दूसरों की परतन्त्रता में आ जाने से है । जो विचार से शून्य हैं वे मनुष्य ही ग्रहण त्याग की क्रियाओं किंवा इच्छाओं में फंसे रहते हैं ।

कल्पित वस्तु के अधिष्ठान के ज्ञाता पुरुष कल्पित पदार्थों में ग्रहण-त्याग की बुद्धि नहीं करते क्योंकि जो स्वरूप से कुछ है ही नहीं तो किस वस्तु का ग्रहण त्याग करे ? विना प्रयोजन के श्रीमानों को अपना त्याग, वैराग्य दिखाना और विरक्त का स्वांग धारण करना, यह स्वार्थसिद्धि है न कि परमार्थसिद्धि । विरक्त जी

महाराज! जो ऊपर से तो बन्ध–मोक्ष तथा भ्रम से रहित अपने को कथन करता है और हृदय से अच्छे प्रकार से भ्रम निवृत्त हुआ नहीं, वह विचारशून्य पुरुष व्यवहार और परमार्थ दोनों में तपायमान रहता है। यदि कहो तपायमान क्यों रहता है, सो सुनो कि माया के कार्य जो वैराग्य, शम, दम आदि दैवी सतोगुण के कार्य हैं और काम, क्रोध आदि जो आसुरी गुण हैं वह स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर में न्यूनाधिक भाव से जो अनात्मधर्म हैं अवश्य करके सबके अन्दर रहते हैं। उनको अपना धर्म मानकर तपायमान होता है क्योंकि उसने ब्रह्म से अभिन्न अपनी प्रत्येक आत्मादृष्टा साक्षी का अनुभव नहीं किया अस्तु। महाराज! अहंकार रूप कारण के नाश से नाम रूप जगत्प्रपंच कार्य का बिना प्रयत्न ने आपही नाश हो जायगा। शरीर को जड़ाया मारने से शोक निवृत्त नहीं होता और न सुख ही होता है।

सुख कहते हैं महाराज! आवागमन से रहित होने को वा आवश्यकताओं के कम करने को। किंवा स्वतन्त्र

जीवन को। महाराज ! सम्यक् दृष्टि होने से सन्त होते हैं। हाथ में रोटी लेकर खड़े २ खाने से या लाल कपड़े से किंवा नङ्गे रहने से सन्त या महात्मा नहीं होते। देखो ! महात्मा शब्द या सन्त शब्द या विरक्त शब्द कहना बहुत सरल है परन्तु उसका अर्थ बड़ा गम्भीर है। जब तक दृष्य प्रपञ्च अर्थात् संसार में अपनी कीर्ति आदि की जिज्ञासा है, तब तक समझना चाहिये कि अज्ञान का अंकुर अभी तक नहीं गया और जब तक अज्ञान है तब तक महात्मा कहलाने का अधिकारी नहीं। यदि नाम रखने मात्र से कृतकृत्यता होती तो हम पशुओं का नाम सच्चिदानन्द, सर्वदानन्द इत्यादि रख कर मुक्त कर देते परन्तु मुक्ति तो ज्ञान से होती है और किसी उपाय से नहीं। जो जिज्ञासु स्वधर्म आचरण द्वारा विवेक वैराग्य सहित अपना निर्वाह करते हुए उस परम् तत्व में अपनी वृत्ति लगाए रखते हैं वही परम् त्यागी हैं और वहीं स्थूल तथा सूक्ष्म जगत् को त्याग कर उस निरञ्जन देव को प्राप्त होते हैं, बिना विचार के जो भी ग्रहण तथा त्याग किया जाता है वह सब दुःखदायी

होता है और प्राणी कष्ट से कष्ट में रहकर कर्मों के भवंर में पड़कर नष्ट हो जाता है, महाराज ! जिनको संसारी विषयों में सुख जान पड़ता है और परमार्थ का सम्पादन करना जो केवल लोकाचार समझते हैं, ऐसे मनुष्य परमार्थ का बहाना लेकर प्रपञ्च के प्रति रस का आस्वादन करते हैं। ऐसे मायिक वेषधारियों को ढोंगी साधु जानना चाहिये।

विरक्त जी ! भेदजन्य ज्ञान में चाहे प्रवृत्ति हो अथवा निवृत्ति सब ही निष्फल है, जैसे सन्निपात वाले व्यक्ति का बकना व्यर्थ है उसी प्रकार अभेद जन्म ज्ञान में प्रवृत्ति भी सफल है।

विरक्त महात्मा बोले—देवि ! क्या तुम शास्त्र पढ़ी हो जो तुम ऐसे उच्च पद की वार्ता करती हो ?

देवी बोली—महाराज ! मैं शास्त्र नहीं पढ़ी। देखो जिसको अपने स्वरूप का अनुभव हुआ है वह शास्त्र का सहारा नहीं लेता क्योंकि अनुभव से ही सम्पूर्ण शास्त्रों की रचना हुई है, अनुभव नाम सत् चित आनं का है। शास्त्रों से ब्रह्म जाना नहीं जाता, ब्रह्म तो

स्वयं अपना स्वरूप है, सो पहले ही से सिद्ध है। निष्कर्तव्य में जो कर्तव्य की भ्रांति है उसके दूर करने के लिये गुरु, शास्त्र तथा वैराग्य आदि साधनों की सफलता है कोई स्वस्वरूप की प्राप्ति में सफलता नहीं। अत्यन्त दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति के निमित्त अनेक विधि बुद्धिजन्य कर्तव्य क्लेशों की निवृत्ति ही वेदान्त श्रवण का फल है। आत्मा के स्व-रूप में बन्ध का नाश और परमानन्द की प्राप्तिरूप मोक्ष वेदान्त-श्रवण का फल नहीं। यदि कहो कि बन्ध क्या है, सो सुनो ! अवस्थाओं का तथा जाति आदियों का अभिमान ही बन्ध है और अनात्म अभि-मान को ही भ्रमज्ञान कहते हैं सो भी वृत्ति विशेष है। अतः वृत्तिकृत बन्ध ही संसार है और कुछ नहीं। 'अहं ब्रह्म' इस अन्तःकरण की वृत्ति विशेष से कार्य सहित अज्ञान की निवृत्ति ही मोक्ष है। अनात्म अध्यास आत्मा में सच्चे प्रतीत होते हैं, वह अनात्म अध्यास अर्थात् यह मैं हूं और यह मेरा है, श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के द्वारा निवृत्त हो जाते हैं। जैसे अग्नि

में तापने से जाड़ा भाग जाता है और मैं द्रष्टा साक्षी सत् चित् आनन्द स्वरूप अवाङ् मनस गोचर आत्मा हूं, ऐसा निश्चय करके पूर्व शरीर आदि का जो निश्चय था, उस निश्चय का नाश हो जाता है और पूर्व देह से विलक्षण उत्तरकाल में आत्मरूप शरीर उत्पन्न होता है।

यह नियम है कि जो निश्चय दृढ़ अपने मनोभाव में होता है वही पुरुष का शरीर (अर्थात् स्वरूप होता है) और पश्चात् भी वही होता है अर्थात् वही उसकी गति होती है। जब ही तो हिन्दुओं में मरण-काल में राम नामोच्चारण करवाते हैं। अस्तु, महाराज! यहे असीम आनन्द जो आत्म-आनन्द किंवा निजानन्द है, स्वयं ही सबको प्राप्त है और यही अपना स्वरूप है परन्तु भेदवादी कामना वाले पुरुषों को भिन्न पदार्थों की प्राप्ति हो जाने से प्रत्येक को अनुभूति होती है परन्तु मूर्ख मनुष्य उस प्राप्तव्य वस्तु में सुख मान बैठे हैं और जो कामना करके उस पदार्थ को नहीं पाते दुःखी होते हैं। परन्तु निज स्वरूप का जो अभिलाषी होता है वह दूसरे पदार्थों की कामना नहीं करता अर्थात् जो

सम्पूर्ण कामनाओं का गला घोंट देता है उसको सदा मिलता है और जो उसको प्राप्त कर लेता है वह निष्काम हो जाता है क्योंकि वह अनादि, अनन्त आनन्दमय सुख है इसलिये आत्मा की पहचान ही वास्तव में ब्रह्मानन्द है। यह किसी साधन द्वारा प्राप्त नहीं होता। साधन तो किसी दूसरे के लिये होता है अपने आपके लिये नहीं। अस्तु, कदाचित् पूर्व पुण्य के प्रभाव से किसी ब्रह्मवेत्ता गुरु के दर्शन हो जायें तो उसको सद्-गुरु के द्वारा यह निश्चय हो जाता है कि यह अज्ञान का कार्य असत् जड़ दुःखरूप जो स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर है सो देहरूप संघात अपने धर्मों सहित मैं नहीं, यह मेरा नहीं, यह पांच तत्वों का रचा हुआ है किंवा मायारूप है। महाराज! जब तक हम सर्व के अधि-ष्ठान को अपने प्रत्यग् आत्मा से अभिन्न करके साक्षात्कार नहीं कर लेते तब तक चाहे नङ्गे रहें और चाहे घर घर रोटी मांगकर और हाथ में लेकर क्यों न खायें, मुक्ति नहीं मिलेगी और जब मुक्ति नहीं तब तक यह जीवन स्वतन्त्र नहीं हो सकता।

महात्मा बोले-हे देवी ब्रह्म विद्या की उत्पत्ति होने पर भी पूर्व की तरह शरीर में जो बोधवान वर्तमान रहा या क्षुधा पिपासा से युक्त रहा तो ब्रह्म विद्या का फल क्या हुआ ?

देवी बोली-महात्मा जी ! जैसे मैं सर्प की सफेद कञ्चुली सर्प के शरीर से रहित होकर सर्प करके त्यागी हुई सर्प के आश्रय जो बिल है उसमें पड़ी है परन्तु सर्प उसमें (उतरी हुई कञ्चुलो में) अहंता तथा ममता नहीं करता उसका उसकी तरफ़ ध्यान तक नहीं होता उसी प्रकार स्थूल आदि शरीरों को अनात्मरूप जानने से बोधवान को उसमें अहंता तथा ममता रूप सम्बन्ध नहीं होता। अतः उसको उसने त्याग किया है। और क्षुधा पिपासा जो प्राणों के धर्म हैं उनको अहङ्कार के धर्म मानता है मुक्त आत्मा राम के नहीं।

महात्मा बोले-कि हे देवी बोधवान इस मिथ्या जाग्रत रूपी स्वप्न में सच्ची जाग्रति कैसे प्राप्त करलेता है ?

देवी बोली-देखो जो अपना अनुभव है वह अलक्ष्य है और अलख निरञ्जन है वह दूसरे करके जानने में

नहीं आता। जिसको आकाश की भी उपमा नहीं दी जासकती, जो कि अनुभव का भी सार है, उसको लक्ष्यांश कहना केवल कल्पना मात्र है जो कि मिथ्या कल्पना से उत्पन्न हुआ है। इसलिये वह सत् नहीं कहा जा सकता परन्तु अद्वैत ब्रह्म के लिये भी अनुभव का कोई काम नहीं। क्योंकि अनुभव भी द्वैत में भी रह सकता है। अनुभव और अनुभाव्या अनुभाव्यता यह त्रिपुटि अनुभव के ही कारण उत्पन्न हुई हैं इस लिये महात्मा जी मेरे को तो यही कहना अच्छा प्रतीत होता है कि वह पद अनिर्वचनीय है। परन्तु जिसपर सच्चे गुरु की कृपा होती है उसको बोध हो जाता है और उस को सांसारिक धर्म अर्थात् शरीर के जन्म मरण रोगादि स्पर्श नहीं करते, सम्पूर्ण प्रतिकूलताएं अनुकूलता में समावेश हो जाती हैं। जैसे आम का खट्टापन आम के पकने पर मधुरता में बदल जाता है, जो कुछ सच्चा जान पड़ता था वह नहीं के बराबर हो जाता है और जो नहीं हैं वह तो है ही नहीं तथा है और नहीं दोनों के न रहने पर वह एक ऐसा शून्य

दशा को प्राप्त हो जाता है उसके पश्चात् शुद्धज्ञान अर्थात् सारे अध्यास निवृत होजाएं जो शून्य अवस्था से परे हैं उसको जानकर शान्ति मिल जाती है। और अद्वैत निरूपण होने से उसकी द्वैत कल्पना सदैव के लिये मिटजाती है और वह फिर ज्ञान चर्चा आदि कर के दूसरों को भी सच्चे मार्ग पर ले आता हैं और वह अजन्मा स्वप्न में ही सच्ची जाग्रति का अनुभव करलेता है (अर्थात् तुर्या का) और जीवित दशा में ही अशरीरी हो जाता है अर्थात् विधेय कैवल्य अस्तु।

महात्मा बोले कि हे देवी! बोधवान जीवित दशा में ही शरीर रहित हैं तो खान पान आदि व्यवहार कैसे होगा अर्थात् मैं आता हूं, जाता हूं, लेता हूं, देता हूं ये व्यवहार नहीं कर सकता।

देवी बोली—यदि परमार्थ दृष्टि करके आत्मा में शरीरत्व होवे तो जीवित दशा में शरीरभाव की निवृत्ति नहीं हो सकती, परन्तु शरीर तो मिथ्या अज्ञान करके प्रतीत होता है। और इस शरीर से सम्बन्धित करके दूसरे धर्म प्रतीत होते हैं सो तत्व ज्ञान करके मिथ्या

अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है (अर्थात् कल्पित तादात्म्य सम्बन्ध की) अतः जीवित दशा में ही शरीर की निवृत्ति हो सकती है जैसे रस्सी के मिथ्या ज्ञान से सर्प की प्रतीति होती है और रस्सी के यथार्थ ज्ञान से सर्प के निवृत्ति होती है क्योंकि शरीर आदिकों में आत्माभिमान रूप जो मिथ्या अज्ञान है उस मिथ्या अज्ञान के होने से ही आत्मा में शरीरत्व भाव हैं और उस मिथ्या अज्ञान के अभाव होने पर मित्या शरीर भाव का अभाव हो जाता है, इस अन्वय व्यतिरेक करके शरीर भाव में अविद्या कृत्व भाव की सिद्धि हुई आत्मा जो अशरीरत्व है वह आत्मा का स्वभाव है उस स्वभाव की निवृत्ति कदापि नहीं हो सकती क्योंकि स्वभाव की हानि होने से नित्य वस्तु के नाश का प्रसंग आजाएगा जीवन मुक्त पुरुष में भ्रान्तिरूप कारण के अभाव होने से शरीर रूप कार्य्य का अत्यन्त अभाव है। अतः जीवन मुक्त पुरुष में अशरीरत्व स्वभाव सिद्ध है जो मनुष्य यह कहते हैं कि विदेह मुक्ति मरने के पश्चात् मिलती है उनको अपने स्वरूप का अनुभव नहीं अर्थात् बोध शून्य

हैं। क्योंकि जो साक्षी भूततुर्या है जो कि तीनों शरीरों का अधिष्ठान है बोधवान को उसका निश्चय होता है उसमें शरीर तीन कालों में नहीं है। ना अज्ञान काल में था ना बोध काल के पश्चात् है भ्रान्ति के कारण रस्सी में सर्प के नाईं मित्या प्रतीति हुई थी बोध होने पर मित्या प्रतीति सदैव के लिये निवृत्त होजाती है। जीवन मुक्ति तथा विदेह मुक्ति का भेद अबोधवान को प्रतीत होता है। बोधवान को नहीं दो संज्ञा होने से वस्तु के स्वरूप में भेद नहीं आता अस्तु महाराज! ये बन्ध तथा मुक्त का विनोद माया के कारण है जहां नाम रूप को उड़ा दिया जाता है वहां मुक्तपना तथा बन्धपना नहीं रहता।

महात्मा बोले—हे देवी! यह तुमने बोध की बात कही, परं बोध क्या है?

विश्रान्ति देवी बोली—'दृष्य कानेति नेति' शब्दों से अर्थात् आत्मा स्थूल भी नहीं सूक्ष्म भी नहीं।

ऐसा भी नहीं वैसा भी नहीं इत्यादि तिरस्कार करके अपने अनुभव से ही जो प्राप्त होता है वह अनु-

भव ज्ञेय है जो ज्ञानदृष्टि से देखने योग्य है चर्मचक्षु से नहीं। ब्रह्म माया और अनुभव की बात को जानने वाली सर्वसाक्षीभूता एक तुर्या अवस्था ही उसका भी साक्षीभाव वृत्ति के कारण है अर्थात् तुर्यापन में वृत्ति है उसके पश्चात् उपरति अवस्था है जिसको उन्मनि या निवृत्ति भी कहते हैं, वह उन्मनि अवस्था में बोधवान् हुआ यह ज्ञानपने का भाव विलीन हो जाता है। वहीं विज्ञान शब्द का किंवा परम् बोध शब्द का अर्थ है। जब विज्ञानवृत्ति भी ब्रह्म में लीन होजाय बस वही कैवल्य ब्रह्म है वहां पहुंचकर कल्पना का सदैव के लिये अन्त हो जाता है, वही योगियों का एकान्त विश्राम है उसको अनुभव से जानना चाहिये अस्तु।

विरक्त महात्मा बोले—देवी! तुमको धन्य है, तुम्हारे माता पिता को भी धन्य है कि जिनके ऐसी सन्तान उत्पन्न होती है। तुम तो कृतकृत्य हो गई। तुम्हारे साधन को देखकर और तुम्हारे संयम को जानकर चित्त बहुत प्रसन्न होता है। तुमसी दूसरी देवियों का बड़ा कल्याण होगा। तुम घर में रहती सहती हुई भी सन्यासिनी हो।

अच्छा, मैं भी सब को त्याग कर अवधूत बनूंगा और फिर कभी आकर दर्शन करूंगा। तुम्हारा नाम क्या है और किस कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है?

देवी बोली—महाराज! मेरे नाम तो अनेक हैं, कोई 'विश्रान्ति' कहता है तो कोई 'शिवशक्ति', कोई 'महामाया' और कोई 'अनिर्वचनीया' कहते हैं और मेरा जन्म द्विजोति-कुल में हुआ है। महाराज! बनो मत, जो बनेगा वह बिगड़ेगा। कर्तव्य-अकर्तव्य, ग्रहण-त्याग से रहित हो जो कि स्थूल, सूक्ष्म अनात्म शरीर के धर्म हैं। इस सूक्ष्म अहङ्कार को त्याग कर अपने स्वरूप साक्षीभूत तुर्या पद में स्थित हो। तितिक्षा, ज्ञान, वैराग्य, क्षमा आदि गुणों रहित केवल भीख मांगने से तथा मूर्ख मनुष्यों की बड़ाई करने से किंवा वस्त्र न रखकर जाड़े में मरने से कृतकृत्यता नहीं होती, अस्तु।

विरक्त महात्मा बोले—देवि! यह जागृत आदि तीनों अवस्थाओं में आत्मा कुछ विलक्षण जान पड़ता है अर्थात् विकारी बदलने वाला दीख पड़ता है क्योंकि

हम जैसा अपने को जागृत में मानते हैं वैसा स्वप्न में नहीं और जैसा स्वप्न में जानते हैं वैसा सुषुप्ति में नहीं।

देवी बोली– जैसे राजा किसी भी स्थान में क्यों नहीं जाय राजा ही होता है दूसरा नहीं। यह स्थान का भेद है राजा का भेद नहीं। उसी प्रकार यह नहीं कि आत्मा तुर्या अवस्था में या सुषुप्ति अवस्था में ही निर्विकार है किंवा निर्विकल्प मन के धर्मों से रहित है और जाग्रत स्वप्न में आत्मा रूपी राजा विकारी तथा सविकल्प है। बुद्धि की विकसित अवस्था जाग्रत है अर्थात् स्थूल वासना का विलास है और बुद्धि की संकुचित अवस्था स्वप्न है अर्थात् सूक्ष्म वासना का विलास ही स्वप्न है। और दोनों वासना विलास की लय अवस्था सुषुप्ति है अर्थात् बुद्धि वासना रूप जाग्रत तथा स्वप्न की निजात्मक सुषुप्ति अवस्था है जैसे सम्राट का एक स्थान समाज सहित अपने बैठने का होता है और एक स्थान खान पान आदि का होता है और एक निजी आराम करने का होता है। इसी प्रकार यह

आत्मा जाग्रत स्वप्न में अनेक प्रकार की लीलाएं किंवा क्रीड़ाएं करता हुआ और पाप पुण्य के फल सुख तथा दुःखों को देखता हुआ सुषुप्ति दशा में आजाता है जो कि इसका निजी स्थान है। वहां न कोई उसको भय है और न शोक केवल अपने निजी आनन्द में है वहां वह अच्छी प्रकार से अद्वितीय ऐश्वर्यमान निश्चित होता है और वहां अपना निरूपाधिक स्वरूप जानने में आता है। वहां वह स्वयं प्रकाश स्वरूप है इसलिये वहां आत्मानन्द भी है। प्रथम के स्थानों में अर्थात् जाग्रत स्वप्न में जो सांसारिक सुख तथा दुःख किंवा अनुकूलता प्रतिकूलता तथा राग द्वेष आदि का अनुभव करता था वह सब अन्तःकरण के धर्म हैं। अस्तु।

विरक्त जी महाराज! प्रश्न तो करदिया परन्तु ध्यान देकर सुनना यदि ये हमारे आत्मा के धर्म होते तो सुषुप्ति में कैसे दूर हो जाते जब हम जागृत अवस्था में अस्थूल शरीर के अभिमान को कोट की तरह पहिन लेते हैं तब उसके धर्म सुख दुःख आदि अर्थात गोरा, काला, लूलापन, लंगड़ापन, अन्धापन, बहरापन आदि

धर्म भी हममें आरोपित हो जाते हैं और उसी समय स्त्री-पुत्र, राज-पाट, अमीर-गरीब आदि का ओरोप्य आत्मा में अर्थात् हममें कल्पित होजाते हैं। इसी प्रकार स्वप्न में जागृत धर्मों सहित स्थूल शरीर आदि का अर्थात् धर्म सहित धर्म का अभिमान जाता रहता है तो स्वप्न में सूक्ष्म शरीर का अपने में आरोप्य करके पुण्य पाप के फल का अनुभव करता हुआ सुखी दुःखी होता है परन्तु वह उसके बन्धन में नहीं पड़ता क्योंकि उसका स्वरूप असङ्ग है। अस्तु।

इसी नियम के अनुसार जागृत में भी जो २ अनुभव करता है बन्धन में नहीं पड़ता क्योंकि असङ्ग है। शुद्ध स्वरूप क्या जाग्रत क्या स्वप्न और क्या सुषुप्ति सब स्थानों का साक्षी आनन्द स्वरूप आत्मा जागृत तथा स्वप्न में अनेक प्रकार की खेल कूद करता हुआ सा दीख पड़ता है और पाप पुण्य के फलों को देखता हुआ नियम के अनुसार अपने निजी कमरे में प्रवेश कर जाता हैं अर्थात् सुषुप्ति अवस्था में। तात्पर्य यह है कि यह आत्मा तीनों स्थानों में अपनी मौज तथा इच्छा

पूर्वक विचरण करता है और जो कुछ भी वहां का तमाशा देखता है उससे बन्धन में नहीं पड़ता बल्कि ज्यों का त्यों शुद्ध निर्विकार निकलता है जैसे मगरमच्छ नदी में अपनी स्वतन्त्रता इच्छा पूर्वक इधर उधर घूमता हुआ आराम की जगह में अर्थात् पानी की तली में चला जाता है पानी और उसकी लहरों का उसके ऊपर कोई असर नहीं पड़ता क्योंकि वह जानता है कि यह पानी की तरङ्गे मेरा कुछ नहीं कर सकतीं इसी प्रकार जागृत में मुझको भय, शोक, प्रसन्नता, अप्रसन्नता आदि जो होते हैं वह मन के कल्पित धर्म हैं अर्थात् मरने की चिंता, विवाह, नौकरी आदि की चिंता यह अनेक प्रकार की तरङ्गें मानसिक विचार की सीमा के अन्दर भले ही हों, परन्तु साक्षी चेतन आत्मा केवल उनको देखता ही है, जब अपने निजी कमरे में जाता है अर्थात् सुषुप्ति स्थान में अस्तु तो वह स्थूल सूक्ष्म शरीर के अभिमान को कोट कञ्चुक की तरह त्याग जाता है। जो विचार रखते हैं कि कोट कुर्ता उतर गया तो हमको क्या हमतो कोट कुर्ता नहीं, कमरा नहीं, हमतो इनसे प्रथक हैं इस प्रकार

माने हुए जीवन मरण से हमको क्या, हम आत्मा तो मरते जीते नहीं ये सब हममें शरीर के सम्बन्ध के कारण से प्रतीत होते हैं, और सम्बन्ध केवल मनोमात्र है अर्थात् माना हुआ है। जैसे कोई व्योपारी परदेश में जाकर जब कोई माल खरीदता है तो वह कुछ समय के लिये दलाल से अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है, अस्तु जैसे स्वप्न में हमको शत्रु या बन्दर कुत्ते मारते, लूटते, काटते हैं प्रत्युत इसी प्रकार की और भी अनेक आश्चर्य-मय घटनायें होती जान पड़ती हैं। ये सब निद्रा दोष के कारण भ्रम ही तो हैं क्योंकि जागने पर हम अपने को वैसा नहीं पाते बल्कि हम आश्चर्य करते हैं देखो निद्रा ने कैसा २ विचित्र खेल दिखाया। उसी प्रकार यदि हम अपने वास्तविक स्वरूप साक्षी भूत तुर्या में जाग जाएं तो हमें उस समय अज्ञान से उत्पन्न हुए भ्रम मिथ्या जान पड़ेंगे और हम फिर आश्चर्य करेंगे और हंसेगें कि देखो हमने क्या २ भ्रम देखा अतः आत्मा से जागृत स्वप्न अवस्था का कोई भी सम्बन्ध नहीं। केवल कल्पना है अथवा यों कहो कि

आत्मा की ये "अघट घटना घटीयसी" लीला है और कुछ नहीं परन्तु यह भेद महात्मा जी ब्रह्मवेत्ता गुरु के बिना समझ में नहीं आता और नाहीं नङ्गे रहने से, और न खड़े २ हाथ में रोटी लेकर खाने से समझ में आता है। अस्तु।

विरक्त महात्मा बोले-हे विश्रान्ति देवी ! बोध होने के पश्चात् क्या शरीर इन्द्रियों में कुछ विलक्षणता आ जाती है ?

देवी बोली-नहीं, विषय इन्द्रिय सम्बन्धजन्य सुख तथा दुःख का अनुभव जैसे अज्ञान दशा में होता है वैसे ही बोध काल में भी होता है, शरीर का व्यवहार भी नहीं बदलता केवल मनोवृत्ति अर्थात् मानस संकल्प पूर्व से कुछ विलक्षण होता है। पहिले मैं अज्ञानी हूं, पश्चात् गुरु के सत्सङ्ग से मैं ज्ञानी हूं, बस इतना संकल्प मात्र ही बन्ध मोक्ष है, और कुछ नहीं अस्तु जैसे शरीर आदि को मैं आत्माभिमान करने वाले बोधशून्य जनों में मिथ्या ज्ञान के निमित्त से सुख, दुःख, शोक, मोह, राग, द्वेष, भय आदि देखने में

आते हैं परन्तु बोधवान में वेद–प्रमाण–जन्य ब्रह्म आत्मा के साक्षात्कार से शरीर आदि में आत्माभिमान निवृत्त होने के कारण मिथ्या ज्ञान से उत्पन्न हुए दुःख भय, शोक, मोह, राग, द्वेष आदि क्लेश देखने में नहीं आते अर्थात् इनकी कल्पना नहीं होती। जैसे स्वप्न की सृष्टि जाग जाने पर अपना स्वस्वरूप ही हो जाती है अर्थात् जागने वाला अपना स्वरूप ही जानता है उसी प्रकार बोध होने पर तमाम संसार ज्ञानरूप ही प्रतीत होता है अस्तु।

महात्मा बोले––हे विश्रान्ति! पहले सिद्धि करो, पश्चात् ही ब्रह्म की सिद्धि होगी।

देवी बोली––सारे प्राणी "मैं नहीं हूं" ऐसा कोई नहीं जानता किन्तु "मैं हूं" ऐसा जानते हैं, सो ही आत्मा की सिद्धि है। यदि यह आत्मा की सिद्धि न हो तो तुम लोग "मैं नहीं हूं" ऐसा जानो परन्तु ऐसा नहीं जानते किन्तु 'मैं हूं' ऐसा जानते हो। इसलिये यही आत्मा की सिद्धि है और आत्मा की सिद्धि ही ब्रह्म की सिद्धि है क्योंकि "अयं

आत्मा ब्रह्म" इस वेद के प्रमाण करके आत्मा से अभिन्न होने के कारण आत्मा ही ब्रह्म है यह सिद्ध हुआ। अस्तु, महात्मा बोले कि जब सब ब्रह्म ही है तो व्यवहार कैसे होगा ?

देवी बोली-बोधवान् का व्यवहार 'अहं ब्रह्म' इस ज्ञान-अध्यास के विस्मृत होने पर मिथ्या अध्यास की अनुवृत्ति करके विद्वान् का व्यवहार होता है और अविद्वान् का व्यवहार अध्यास पूर्वक ही होता है। बोधवान के व्यवहार से कोई द्वैतभाव नहीं आजाता। उसकी दृष्टि में द्वैत और अद्वैतभाव अर्थात् एकता अनेकता उसके ही स्वरूप हैं परन्तु अद्वैतभाव जो कि एकत्वभाव है वह उसका वास्तविक स्वरूप है और दूसरा उसका अवास्तविक स्वरूप है अर्थात् बनावटी अस्तु; परन्तु यह भाव भी विद्या तथा अविद्या के कारण से ही हैं, यह सब उपाधिक धर्म हैं विद्या अविद्या से पृथक् उसका अपना स्वरूप निरूपाधिक है।

महात्मा बोले- हे देवी तो बन्धन में कौन है और बन्धन से मुक्त कौन है ?

देवी बोली–जो अनेक प्रकार की मानसिक कल्पनाओं को उठाकर उनको सत् जानता है आप ही उनसे सुखी दुःखी होता है वही बन्धन में है। और बन्धन से वही मुक्त है जो अपनी इच्छा से मानाप कल्पनाओं को उठाकर उनको मिथ्या जानता है और उन कल्पनाओं से अपने को पृथक् जानकर साक्षी द्रष्टाभाव से स्थित रहता है। किंवा जो अपने को कभी सुखी कभी दुःखी देखता है वही मनुष्य बन्धन में है, क्योंकि शरीर के अभिमान को लेकर ही किंवा एकता का अनुभव करके उस शरीर के अनुकूल तथा प्रतीकूलता के कारण एक क्षण में सुख तथा दुःख से दुःखी सुखी होता रहता है वही मनुष्य बन्धन में है। किंवा जिसकी कामनाएं दिन प्रतिदिन बढ़ रही हों और जिसकी मनोवृत्तियां अत्यन्त बहिर्मुख रहती हों अथवा ईश्वर और अपने प्रारब्ध के सन्मुख न रखकर अपने पुरुषार्थ को ही मुख्य मानता हुआ मानुष जीवन के उद्देश को भूल कर जो संसारी विषयों के आधीन रहता है वही मनुष्य बन्धन में है। जिसकी अभिलाषाएं निवृत्त हो चुकी हैं, जिसकी वृत्ति ऐसा हो,

ऐसा न हो, इस प्रकार की मानसिक कल्पना निवृत्त हो गई है, और जिसको अपनी अधिकता न्यूनता का भाव प्रकट ही न हो आपको सर्व में और सर्व को आप में देखने की दृष्टि खुल गई हो वही मुक्त है अस्तु किंवा पांचों विषय रूपी संसार के इन्द्रियरूप और इन्द्रिय को अन्तःकरण की वृत्ति रूप और अन्तःकरण की वृत्ति को चित्तरूप और चित्त को चैतन्य रूप जो अपना प्रत्यग आत्मा है और अपने प्रत्यग आत्मा को ब्रह्मरूप और ब्रह्म को जगत् रूप देखता है अर्थात् मैं ही चित्तरूप हूं, और मैं ही चित्त की कल्पना को कल्पकर इन्द्रिय, इन्द्रि के विषय जगत् रूप के फैलाव में होजाता हूं मैं ही संसार रूप हूं और संसार के रूप में भी मैं हूं यथार्थ में न मैं संसार रूप हूं और न संसार में हूं कारण कार्य में अभेद देखता हुआ सबसे पृथक जो अपने आप को जानता है वही मुक्त तथा शान्त है अस्तु ।

विरक्त महात्मा बोले- हे देवी ! वह पद जब बाणी का अविषय है, गूङ्गे का गुड़ है, जाने तो कैसे जाने ?

देवी बोली—महात्मा जी अब मैं परम् शान्ति की

बात किंवा अनुभव को अच्छी प्रकार से वर्णन करती हूं ध्यान पूर्वक सुनना चाहिये। महात्माओं का परस्पर मिलना इसी कारण से हुआ करता है कि परस्पर प्रश्न उत्तर करके जड़ चेतन की ग्रन्थी खुले। जिस पद को मन वाणी वर्णन नहीं कर सकते जिसकी कल्पना करने से कल्पना शक्ति थक जाती है। वह वेदों का सार परं-गोपनीय रहस्य परंब्रह्म सन्तसमागम से सहज ही में हाथ आजाता है अर्थात् प्राप्त हो जाता है। यह तभी होता है जब कहने सुनने वाले दोनों अधिकारी हों। यह काम बिना ब्रह्मज्ञानी गुरु के नहीं हो सकता। जिस मनुष्य को तीव्र जिज्ञासा है और जिसको संसार के विषय विष के समान प्रतीत होते हैं और तीनों शरीर पञ्च कोशों का विचार करके अपने आपको खोज लेता है अर्थात् अन्वय व्यतिरेक के द्वारा देह अभिमान आदि त्यागकर विचार से काम लेता है, पश्चात् वस्तु आप ही आप अनुभव में आजाती है और बुद्धि को दृढ़ करके यह सोचे कि मैं कौन हूं बस इसके सोचते २ एक दम वृत्ति स्थित हो जाती है और अपना मूल तत्व सहज ही में

हाथ लग जाता है और फिर यह भी अनुभूति होने लगती है कि मैं प्रत्येक दशा में वर्तमान हूं और मैं अवाङ् मनसगोचर होते हुए भी सर्व रूप हूं ऐसा समझने लगता है। फिर भारी से भारी कष्ट आने पर चित्त व्याकुल नहीं होता बल्कि हंसता सा रहता है, अस्तु, पूर्व पक्ष में आत्मा को सर्व का साक्षी कहा है परन्तु सिद्ध पुरुष पूर्व पक्ष को छोड़कर सिद्धान्त को ही ग्रहण करते हैं। जब हम सिद्धान्त पर ध्यान देते हैं, तो जान पड़ता है कि हमारा स्वरूप सर्व साक्षी नहीं बल्कि अवस्था सर्व साक्षी है और हमारा स्वरूप उससे भिन्न है। क्योंकि जब पदार्थ ज्ञान का लय हो जाता है तो फिर द्रष्टा द्रष्टव्य रूप में नहीं रहता अर्थात् वह द्रष्टा भी ब्रह्म तत्व में विलीन हो जाता है तब अहंपने का जो नशा है वह नशा उतर जाता है और मैं पने का नशा उतरना ही अनुभव का लक्षण है। इसी कारण से महात्मा जी उस तत्व को अनिर्वचनीय समाधान अर्थात् गूंगे का गुड़ कहते हैं। क्योंकि जब मैं कुछ रहा ही नहीं तो समाधान का वर्णन कौन करेगा चाहे जैसे विवेक वाले

शब्द हों तब भी अनुभव की दृष्टि से वे सब के सब मायावी हैं, परन्तु वे शब्द अन्दर बाहर गम्भीर अर्थ से भरे हुए होते हैं। शब्दों से अर्थ का ज्ञान होता है और अर्थ के विचरने पर शब्द के अर्थ हो जाते हैं। पर ब्रह्म का ज्ञान शब्दों करके ही होता है परन्तु ब्रह्म शब्द नहीं है वह शब्दातीत है क्योंकि वस्तु के बोध होने पर शब्दों का नाश हो जाता है अस्तु।

विरक्त महात्मा बोले—हे देवी! जब जगत् है ही नहीं तब दिखाई क्यों देता है।

देवी बोली—माया की कुछ ऐसी ही लीला है कि मिथ्या को सत् करके और सत् को मिथ्या करके दिखाती है। देखो! जैसे मनुष्य की निद्रा क्या २ करके दिखा देती है यद्यपि सत्य का निश्चय होने के लिए अनेक प्रकार की युक्तियों के द्वारा ग्रन्थों ने निरूपण किया है तो भी मनुष्यों के हृदय से असत् की प्रबलता नहीं जाती। असत् मनुष्य के हृदय में ऐसा छागया है कि निकाले नहीं निकलता। किसी ने उसका उपदेश नहीं किया तो भी वह दृढ़ हो गया। वेद शास्त्र पुराण आदि

सत् वस्तु का निश्चय कराते हैं, तो भी मनमें नहीं आता। इस संशय में कभी न आना चाहिये कि जो मुझ को दीखता है वह सब सच्चा है देखिये कि प्रत्यक्ष संसार हमारे सामने दिन प्रतिदिन मरता दीखता है परन्तु प्रायः मनुष्य अपने को अमर ही जानते हैं यह माया की लीला सन्त समागम करके अध्यात्म विचार करने पर शीघ्र ही शान्त हो जाती है अर्थात् मैं का पता लगाने से परमार्थ वस्तु सहज ही में हाथ लग जाती है, और परमार्थ वस्तु के बोध से चित्त समाहित हो जाता है और मन अनात्म चिन्तन छोड़ कर चेतन के विषय निमग्न रहने लगता है। यह निरन्तर स्फूर्ति होने लगती है कि मैं वही सत् वस्तु हूं, जो कि सर्व जगत का आधार है, और अपने स्वरूप का अनुभव करते हुए शरीर का ख्याल उठ जाता है। क्योंकि स्वरूप की प्राप्ति के कारण से उसका संशय शरीर की रक्षादि का भाव सदैव के लिये मिट जाता है कि यह कलेवर मिथ्या है अस्तु, पञ्चभूत और पञ्च भूतों का रचा जगत जो कुछ भी दीख पड़ते हैं सब सच्चे हैं ऐसा दीखने पर

सत् नहीं म नना चाहिये, क्योंकि दीखता तो स्वप्न भी है परन्तु सच्चा नहीं और उसका कारण निद्रा वह भी सच्ची नहीं। मृगतृष्णा के जल को देखकर प्यास का मारा भ्रान्तिमान मनुष्य पानी के लिये दौड़ लगाय जल नहीं मिलेगा क्योंकि वहां जल है नहीं वह मिथ्या दृश्य है। काठ, पत्थर की मूर्तियां अनेक प्रकार की दीखने पर भी क्या काष्ट पत्थर के सिवाय अन्य कुछ नहीं। सिनेमा के समस्त दृष्य सच्चे से जान पड़ते हैं पर हैं क्या फोटू के सिवाय और कुछ नहीं। इसी प्रकार तुमको यह दृष्य प्रपञ्च अविद्या के कारण सत् जान पड़ता है अस्तु।

महाराज! मिथ्या वस्तु सच्चे के समान देख तो ली परन्तु उस पर विचार नहीं किया। दृष्टि के हेर फ़ेर से अथवा चित्र की चञ्चलता के विकार से यदि कुछ का कुछ दीख पड़े तो वह सच्चा नहीं माना जाता। यदि हम अपने हाथों में अनेक दर्पण लें और उतने ही हम अपने मुख देखें तो क्या वास्तव में हमारे इतने मुख हैं? नहीं केवल एक है और बाकी के मिथ्या भास हैं अर्थात् छाया हैं। ऐसे बहुत से कौतुक सच्चे के समान ही दीख

पड़ते हैं, परन्तु इन सबको सच्चे कैसे मान सकते है ! अस्तु बिना विचारे जो वस्तु जैसी दीख पड़ती है विचार से वह वस्तु दूसरे ही प्रकार की जान पड़ती है। इसी प्रकार यह मायिक जगत् मिथ्या ही प्रतीत होता है बोधवान् इस बात को जानते हैं, अबोधवान् नहीं। यह अज्ञान की लीला का भाव कुछ ऐसा ही है। मदारी की बाजीगरी भी पराये मनुष्यों तथा बच्चों को सच्ची जान पड़ती हैं। देखो, अभिमन्यु के विवाह में घटोत्कच की माया से अनेक राक्षस नाना प्रकार के पदार्थ और फल मेवा आदि होगये। देखो, मदारी की बाजीगरी और राक्षसों की कपटी माया और लीलाधारी विष्णु भगवान् की विचित्र माया यह तीनों सच्चों की समान जान पड़ती हैं सो माया की बात सब मिथ्या है। अस्तु, यह प्रत्यक्ष दृश्यमान संसार आभास मात्र अविद्या जनक है जैसे मनुष्य का स्वप्न और यह तेरा देह भी अविद्यात्मक प्रतीत होता है। तेरे अन्दर माया प्रवेश कर गई है जो ध्यान पूर्वक मेरे वचन नहीं सुनता, वैसे ही विरक्त बनता है और अपनी हठ किये जाता है। देख ! यह

अविद्यात्मक सूक्ष्म शरीर का ही कारण है कि उस दृष्टि से दृश्य प्रपंच को तू देखता है और मन उस आभास पर जम जाता है। देख ! अविद्या ही अविद्या को देखती है अर्थात् मन अविद्या का कार्य और मन का रचा जगत् इसी कारण से उस बात पर विश्वास हो जाता है क्योंकि तेरा शरीर भी तो अविद्यात्मक है अर्थात् अज्ञान का रचा हुआ है। जैसे निद्रा दोष से स्वप्न का शरीर रचा गया है और उसी काम को तू, मैं मानता है यह कुबुद्धि का लक्षण है इसी से सम्पूर्ण दृष्यमान जगत् सत् सा जान पड़ता है। इधर तो शरीर को सत्य मान बैठा है और उधर यह धारणा करलिया है कि प्रकृति सच्ची है और उसका रचा जगत् जीव सब सच्चे हैं। इसी कारण प्रबल सन्देहों में आकर किसी की तू नहीं सुनता। सत्य वस्तु दो तीन नहीं होतीं वरन् एक ही होती है। अस्तु और देह में आत्म बुद्धि दृढ़ करके धृष्टता के साथ ब्रह्म के दर्शन के लिए विरक्ति का अभिमान करते हुए महात्माओं के पास जाता है, परन्तु वह देह अभिमान तथा उसकी क्रिया का अभिमान दृष्य भ्रम ब्रह्म के दर्शन का

मार्ग रोक देता है। इससे इस देहपन के 'मैं' को त्याग और अहं के लक्ष्य अर्थ को पहिचान कर परमात्मा में अनन्यता होने से तेरे को तुझ से अभिन्न ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाएगा। श्रुति कहती है कि जो यहां नानापन देखता है अर्थात् अनेकता से सम्बन्ध रखता है वह बार २ मृत्यु के मुख में पड़ता है। विद्वान मनुष्य 'मैं' 'तू' दोनों भावों को हृदय से दूर करके परमार्थ तत्व को जानकर मनुष्य जीवन का लाभ उठाते हैं। अस्तु, मूर्ख जगत् का कारण माया तथा अज्ञान को और उसके कार्य शरीर आदि को सच्चा जानकर पदार्थों की प्राप्ति अप्राप्ति में दिन रात दुःखित होते हुए अपने मानव जीवन को नष्ट करते हैं। भाव यह है विचारवान जो कि श्रेष्ठ पुरुष हैं वह तो सार वस्तु को ग्रहण करते हैं और दूसरों को भी कराते हैं। जो बनावटी मनुष्य हैं वह असार वस्तु को ग्रहण करते और दूसरों को भी वही कराते हैं अर्थात् अध्यात्मिक उन्नति छोड़कर भौतिक पदार्थों की प्राप्ति कराते हैं। अस्तु महात्मा जी गुप्त सिद्धान्त के प्राप्त कराने वाले कोई एक विवेक वैराग्य-

वान होते हैं दूसरे लोग तो सिवाय पेट और शरीर के ही दास हैं। इनका जीवन तुच्छ श्रेणी में है अर्थात् इन का जीवन चक्र संकुचित सीमा में है। महाराज! लोगों को सार वस्तु नहीं दीख पड़ती, अस्तु।

महात्मा बोले—हे विश्रान्ति देवी! हम तुमको नमस्कार करते हैं और कहीं एकान्त में बैठकर तूष्णि होंगे।

विश्रान्ति बोली—ग्रहण त्याग वाली बुद्धि केवल दुःख रूप है। सन्तों का तो यही नमस्कार है कि सर्व हमारा ही स्वरूप है। परिच्छिन्न अहंकार करने से तो बन्ध होता है अर्थात हमारा जीवन परतंत्रता में रहता है और परिच्छिन्न देह आदि अभिमान रहित मोक्ष है। मन को एकाग्रता में अर्थात् तूष्णि अवस्था में मैं तूष्णि होता हूं और मन की चञ्चलता में अर्थात् इन्द्रियों के व्यवहार की दशा में अपने को चञ्चल दुःखी जानना। अस्तु बिना अनात्म अहंकार तथा अनात्म धर्म अपने में माने बिना होते नहीं अतः इस अहं मम अहंकार को त्याग मन आदिकों की सविल्पता तथा निर्विकल्पता

का तू तो साक्षी तथा द्रष्टा है इससे तू स्वतः निर्विकल्प है। ब्रह्म से अभिन्न अपने प्रत्यग आत्मा को स्वाभाविक जान इसी का नाम तूष्णिभाव है। ग्रहण त्याग बुद्धि रहित होकर प्रारब्ध के अनुसार जैसा समय आवे व्यतीत करता हुआ देहाभिमान को आत्म देव के आगे समर्पण कर यही नमस्कार है और आत्मा की पूजा भी यही है।

विरक्त महात्मा बोले-हे देवी ! मैं क्या अभ्यास करूं ?

देवी बोली-इसी निश्चय से अभ्यास कर कि अपने सहित सर्व कार्य-कारण-प्रपञ्च अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा ही है क्योंकि कल्पित वस्तु अधिष्ठान से भिन्न नहीं होती। इस विधिपक्ष को ग्रहण कर अथवा मन, वाणी करके जो जगत् के पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं उन सब से रहित सत् चित् आनन्दरूप आत्मा हूं, यह सब जड़ होने से मुझ चेतन आत्मा को नहीं जानते, मैं इन को जानता हूं, इस निषेधपक्ष को ग्रहण कर किंवा विधि-निषेध मन-वाणी का विषय होने से अनात्म

तथा दृष्य हैं, मैं चैतन्य विधि तथा निषेध से रहित हूं, मुझ करके ही विधि तथा निषेध सिद्ध होते हैं।

मैं चैतन्य विधि-निषेध तथा मन-वाणी का अविषय हूं, अवाङ्मनस्-गोचर होते हुए भी सर्वरूप हूं तथा सर्वरूप होते हुए भी द्रष्टा अस्वरूप हूं, जैसे स्वप्नद्रष्टा प्रपञ्च से अवाङ्मनस्-गोचर होता हुआ भी स्वप्न में सर्वरूप है तथा सर्वरूप होकर भी स्वप्नप्रपञ्च से पृथक् है। उपाधि के द्वारा कर्ता होने पर भी अकर्ता है और अकर्ता होते हुए भी कर्ता है। निद्रासहित भी निद्रारहित है और निद्रारहित भी निद्रासहित है। इस रीति से समस्त पदार्थों को उलट पलट कर लेना चाहिये। महात्मा जी! सन्त परमार्थ के अनुरागियों का तो यही निश्चय है कि वह सूक्ष्म अहंकार को त्याग कर अस्ति भाति प्रियरूप जो अपना स्वरूप है उससे दृष्य को अभिन्न जाने, जैसे आकाश घट उपाधिसहित भी आकाश है और घट उपाधि से रहित भी आकाश है, वह एकरस सर्वदा रहता है। उसी प्रकार बोधवान् पुरुष निजात्म स्वरूप को माया, अहङ्कार आदि कल्पित

उपाधि सहित में भी और कल्पित माया अन्तःकरण आदिक उपाधि रहित में भी आपको निर्विकल्प, निर्वि-कार जानता है।

इन निश्चयों से भिन्न और निश्चय भय का कारण है अर्थात् जन्म-मरण का देने वाला है क्योंकि वेद भगवान् ने नानात्व-दर्शन का दोष भी यही बताया है। जो मूढ़ जीवात्मा और परमात्मा में थोड़ा सा भी भेद करता है वह कदाचित् भी शोक से नहीं तरता। अस्तु, ऐसे मनुष्य को माया ने ठग लिया। महाराज! इस कथन में सन्देह नहीं करना चाहिये, जो सन्देह करेगा वह चाहे सिद्ध महात्मा क्यों न हो अवश्य करके अधोगति को प्राप्त होगा। यह कथन यथार्थ ही है कि विवेक वैराग्य से शीघ्र मुक्त होता है। जैसे नेत्र रूप को ही देखता है उसी प्रकार मुमुक्षुओं को कल्पित दृष्य अर्थात् नाम रूप को न ग्रहण करके अपनी प्रत्यक् दृष्टि से सदा सर्वत्र ब्रह्म ही देखना चाहिये। अस्तु, उस को शुभ-अशुभ से कोई प्रयोजन नहीं, उसका काम देखना है।

इतने में ही एक महात्मा और आ गये जिनके शिर पर बाल तो हैं परन्तु दाढ़ी मूछ मुंडी हुई हैं, जूता, छाता तथा चश्मे युक्त सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए हैं, हाथ में पीतल की बालट ली हुई है।

देवी बोली—महाराज ! आप तो साधु हैं ? महात्मा बोले मैं कांग्रेसी महात्मा हूं। हे देवी इस संसार का उद्धार कैसे होगा और हम स्वतन्त्र कब होंगे और स्वराज्य हम को कब मिलेगा ये बड़े नेता लोग जो कार्य कर रहे हैं सफलता क्यों नहीं प्राप्त करते ?

देवी बोली—अरे कांगरेसी महात्मन् ; सुनिये तुम लोग निगुरे हो। तुम साधु लोगों को भी यह जैण्टुलमेन पना आगया है। देखो ! साधुओं को अच्छे २ भोजन वस्त्र तथा युवति, धन, आदि के सान्निध्य से दूर रहना चाहिये। इनके समीप रहने से सत्पुरुषों का चित्त भी विचलित हो जाता हैं अतः इनको त्यागकर मुमुक्षु पुरुष इनसे दूर रहें। उत्तम भक्त योगी महात्माओं का मनभी विषयभोगों की आसक्ति से चञ्चलता को प्राप्त होता हैं और राग द्वेष आदि के कारण मनमें

विवेक वैराग्य आदि विज्ञान रोग शीघ्र नहीं प्राप्त हो सकते अस्तु। महात्मा जी मैं भारतवासियों से एक विनय पूर्वक प्रार्थना करती हूं चाहे साधु बाने में हों किंवा गृहस्थ में, एक तो विचित्र बाना धारण करें जिसको देखकर सत्पुरुष उङ्गलि का लक्ष्य बनायें। अर्थात् अपने देशका पहनावा पहिने वेशधारी साधुओं ने भी पाश्चात्य खाना पींना चाय आदि पान प्रारम्भ करदिया है। और मूंछ मुंडा कर शिर के बाल रखकर तैल आदि से प्रतिदिन स्नान करना यह तो इनका आजकल त्याग-वैराग्य हो गया हैं जो देश की हानि का कारण है। पुरुष तो क्या स्त्रियें भी इङ्गलैण्ड वालों की नकल करने लगी हैं। जो मनुष्य नकल करनी सीख जाता है। उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है और जिसकी बुद्धि नष्ट हो गई उसका व्यवहार दूषित होकर परमार्थ से भी भ्रष्ट हो जाता है जिससे सारे प्राणियों को कष्ट होता हैं। पाश्चात्य शिक्षा से भारतीयों का देहाभिमान इतना विस्तार को प्राप्त हो गया है कि वह पशु के समान हो चले हैं, सिवाय पेट-पूजा के और शरीर की

रक्षा के दूसरा कुछ काम ही न रहा। यह नेम की बात है कि जब नीति का लोप हो जाता है और धर्मशास्त्रों का स्वाध्याय बन्द कर दिया जाता है तथा समाज का भय भी उठ जाता है तो मनुष्य स्वधर्माचरण और जीवों पर दया तथा द्विजातियों के खानपान आदि से भ्रष्ट हो जाते हैं और फिर सत्सङ्ग के द्वारा ज्ञान, भक्ति आदि प्राप्त करना तो दूर रहा उसके बदले में निन्दा, द्वेष, अनीति, दुराचार, परस्पर विवाद, अभक्ष्य-खान-पान, दुराशा, पाखण्ड आदि दुर्गुणों का बड़ा विकट आचरण उन लोगों के मस्तिष्क में बस जाता है। अस्तु, जिस देश की जनता ने ज्ञान, ध्यान, भजन, स्वाध्याय, स्वधर्म-आचरण, कथा, न्याय, नीति, देश-मर्यादा, कुल-मर्यादा, जाति-अभिमान मेट दी वह देश अवश्य ही अधोगति को कभी न कभी प्राप्त हो जायगा। शोक है, आर्यजाति की सन्तान इस अवस्था को प्राप्त हो रही है कि जो म्लेच्छ जातियों के खान पान पर उतारू हो गये हैं। ऐसा कर्म करते हुए भी स्वयं लज्जित नहीं होते। माता-बहिनों को देखो, यह

दिन रात मल-मूत्र-हाड़-मांस-युक्त इस शरीर को ही शृङ्गार करती रहती हैं और सुख-शान्ति का साधन पतिव्रत धर्म और गृह-कर्म को भूल रही हैं।

देवी बोली—अरे कांग्रेसी महात्मन्! तुम जैसे जब साधु बनने लगे, देश का सुधार तो तभी हो गया था। केवल क्षणिक वैराग्य में आकर किसी से चोटी कटवाकर कपड़े लाल करके वैराग्य थोड़े ही जाना जाता है। मन में बनावटी वैराग्य लाकर सच्चे गुरु नहीं मिला करते। पाखण्डी गुरु बनाकर पाखण्ड करना सीख जाता है और मुंहजोरी का स्वभाव बना कर पाखण्डी बन जाता है। मैं तुझ से पूछती हूं—तू ने जो यह जूता, छाता, पीतल की बालटी, ऊनी चादर ले रक्खी है इनकी क्या आवश्यकता है? यह पन्द्रह रुपये का जूता जो कि जीवित गौ का चमड़ा निकालकर बनाया गया है, क्या तेरे को इसका पाप नहीं लगेगा? क्या तू ग्वाला है कि जो नङ्गे पैर गौ के चराने में कांटा लग जायगा, जाड़े के मौसम में छाते का क्या काम? ऐसे पाखण्डी साधुओं ने ही सच्चे साधुओं की

मान, प्रतिष्ठा कम करदी हैं। अस्तु, शिर पर बाल रख कर डाढ़ी–मूछ को बनाते रहते हो, तुम को अपने कर्म से और वर्ताव से लज्जा नहीं आती कि कोई विचार–वान् पुरुष हमको क्या कहेगा, केवल कपड़े रङ्गे और देश के उद्धार का भूत शिर पर सवार होगया। अस्तु, महात्मन्! प्रथम तू अपना कल्याण सोच, देश का कल्याण मत सोच, अपने कल्याण से जगत् का कल्याण स्वयं हो जाता है। देख! यह बात कभी न भूलनी चाहिये कि जिस देश के मनुष्य जाति तथा प्राचीन व्यवहार को किंवा देश के स्वरूप को भूल जाते हैं और परधर्म को ग्रहण करने लगते हैं वह देश या जाति कभी सुरक्षित नहीं रह सकती। वर्तमान काल में जितने भी देश–सुधारक हैं इनका आचरण शास्त्र–मर्यादा से रहित है। जो मनुष्य अपने ही वर्णाश्रम के धर्म को पालन नहीं करता वह दूसरों का उद्धार कभी नहीं कर सकता। जब किसी व्यक्ति को अपनी जाति, कुल, आश्रम तथा सामाजिक नियमों का ज्ञान नहीं है और जो आप ही अपने कर्तव्य से विमुख है वह दुःखित

प्राणियों का दुःख निवारण नहीं कर सकता। जो मनुष्य अपनी योग्यता को बिना जाने जो मन में आया सो बक देता है ऐसे मूर्खों की समझ से संसार का उद्धार नहीं हो सकता, अस्तु।

देवी बोली! तुम्हारा कोई कर्तव्य है तो यह है कि अपने दबे हुए आत्मारूपी धन को निकाल तुम कितने ही बड़े आदमी क्यों न बनजाओ परन्तु जबतक कामनाओं के मैले कुचैले फटे पुराने वस्त्र तुम्हारे नहीं उतरेंगे और शोक मोह के सूखे टुकड़े तुम्हारे पेट में जो दर्द करके पेचिश कर रहे हैं और पेट तथा इन्द्रियों के दास बने रहोगे तबतक तुमको स्वतन्त्रता किंवा स्वराज्य नहीं मिल सकता अस्तु।

कांगरेसी महात्मा—बोले देवी? क्या योग के विषय में भी कुछ जानती हो?

देवी बोली-अरे! कांगरेसी महात्मा क्या तेरी बुद्धि पर धूल पड़गई है उस उद्देश्य को मत भूल जिस उद्देश को लेकर तूने कपड़े रंगे और सिर मुंडाया है। कहीं योग सीखता है, कहीं चमार भङ्गी आदियों

के साथ खान, पान करता है, किसी को गायत्री का उपदेश करता फिरता है, किसी से कहता है–ब्राह्मण जाति से नहीं होते कर्म से होते हैं–जो ब्राह्मण कर्म नहीं करे तुम उसको ब्राह्मण नहीं माना। मैं तेरे से पूछती हूं कि तू बता साधु किसे कहते हैं? जो साधु साधु के कर्म धर्म नहीं करे वह भी साधु नहीं। तुम ने जो उपदेश का ढोंग बान्धा है कि तुमसे स्वधर्म आचरण का पालन नहीं होता इससे भिक्षा वृत्ति तुम लोग नहीं कर सकते। अस्तु तुम जितने भी मूछ मुंडे हो, सबके मनमें दोष छिपे हुए होते हैं। पता नहीं तुम लोगों का क्या सिद्धान्त है? क्या योग सीखने वालों के यही लक्षण होते हैं? योग का बहाना लेकर किसी जनवास का सहारा लेकर गढ़ा खुदवाकर अपनी मान बड़ाई करवा कर अपने को योगी कहलवा कर प्रसिद्ध करेगा, किसी के नाक में रस्सी कराएगा, किसी के मुंह में कपड़े की चीर निकलवाएगा, किसी को भूखा मारेगा, पश्चात् आप आराम से बादाम फल दूध मक्खन उड़ा २ कर अपना उल्लू सीधा करेगा। स्वयं

जनता से रुपया इकट्ठा करके सेकिण्ड क्लास में बैठकर इधर उधर सैर करता फिरेगा। चल परे हठ ऐसे माया धारी कपटी धूर्त, मूर्ख को योग नहीं बताया जाता। साधु महात्माओं का जीवन निरपेक्ष स्वतन्त्र निर्भयरूप होता है अस्तु।

कांगरेसी महात्मा बोला—देवी ! मैं बिना गुरु के नहीं हूं।

देवी बोली—तेरा गुरु भी ऐसा ही होगा। जैसा गुरु वैसा ही चेला ! मैं तुमसे प्रार्थना करती हूं कि तुम लोगों को सबसे बड़ी समस्याओं और शिक्षाओं के सम्बन्ध में अधिक से अधिक ज्ञान का संचय करना चाहिये अर्थात् उत्तम ग्रन्थ पढ़ने चाहियें। योगी तथा महात्माओं से आत्म उन्नति के विषय में शङ्का समाधान करने चाहियें और ज्ञान आवरण में रहना चाहिये। और यह स्मरण रखना चाहिये कि अव्यवस्थित जीवन अर्थात् उच्छृङ्खलावृत्ति कभी नहीं बनानी चाहिये किसी के साथ खा, पी, लिया। मूछ के बाल काटकर शिर के बाल रखलिये। जूता पहिने रोटी खाली और

कहने लगे इससे क्या होता है। देख तू यदि अपना भला चाहता है तो तीन बात देखकर अपने मानव जीवन को सफल बनाने के लिये उद्योग कर जैसे एक तो एकान्त में छोटी सी कुटिया हो, दूसरा जल का सहारा हो, तीसरे उत्तम जाति वालों के घर हों। अपने इन्द्रिय संयम में तत्पर होजा ! विकारी चित्त को सदैव के लिए शान्त कर, कुछ काल रामायण का पाठ कर, कुछ काल महामन्त्र का जाप कर तथा ध्यान कर बेप्रयोजन की बात मत कर कि हम स्वतन्त्र कब होंगे। अस्तु, बिना प्रयोजन पञ्जाब आदि में भाग: २ मत फिर यह मानव जीवन ईश्वर भक्ति के लिये है न कि पेट इन्द्रियों की तृप्ति के लिए। अनेक प्रकार की आशा बान्धकर गृहस्थियों से अपनी कामनाओं को पूरी करना यह घृत की आहुति अग्नि पर देना है। जो आशा के दास इन्द्रियों के सेवक हैं, और जो स्त्री के पुजारी हैं, और जो शरीर के रक्षक हैं उनको स्वराज्य की सिद्धि नहीं हो सकती अस्तु।

महात्मा बोले कि देवी ! गुरु कैसा होना चाहिये

और सच्चे साधु सन्सार में नहीं मिलते ?

देवी बोली--देव ! जब अनेक जन्मों के शुद्ध पुण्य इकट्ठे होते हैं तब कहीं सच्चे महात्माओं का दर्शन होता है, कोई सहज बात नहीं है। सच्चे साधु उन्हीं लोगों को नहीं मिलते जिनको सच्ची तलाश नहीं है और जिन्होंने अपने वर्ण आश्रमों के धर्मों को त्याग कर दूसरे देश-जाति के धर्मों को अपनाया है। यह वही लोग होते हैं कि जो अपने कर्तव्य पर दृष्टि न रखकर दूसरों पर नुक्ताचीनी करते रहते हैं। ऐसे संकुचित दृष्टि वाले का जीवन-चक्र सदैव दुःखरूप होता है चाहे वे कैसी ही बातें करें। जो मनुष्य अपने देश के जातीय बान्धवों की निन्दा करता रहता है वह मनुष्य किसी दूसरी जाति से उत्पन्न हुआ समझो। अस्तु, महाराज ! शम, दम साधनों से रहित होकर सच्चे साधुओं को खोजना और अपने को साधु कहलाना केवल ढोंग है। प्रायः मनुष्य वैराग्य के अभाव होने पर सुख के लिये घर बार को छोड़ कर माता, पिता, स्त्री, पुत्र, बान्धवों को छोड़ कर नामधारी साधु

बन जाते हैं। ऐसे निर्लज्ज मनुष्य का मुख नहीं देखना चाहिये, ऐसे मनुष्य दुःखों से मुक्त नहीं होते, वे लोक-परलोक दोनों से भ्रष्ट हो जाते हैं और फिर कहीं महन्त पन के झगड़े में, कहीं मकान, पाठशाला आदि के झगड़ों में ही मर जाते हैं और अज्ञान उनका पीछा नहीं छोड़ता। यह बात याद रखनी चाहिये कि जो मनुष्य आशाबद्ध, दुराचारी, गृहस्थ के मारे हुए बांधवों के पिटे हुए अभिलाषाओं के पूरी न होने पर निर्धन घर से निकल जाते हैं, वही मनुष्य सन्सार में दुराचार फैलाते हैं अर्थात् चोरी, सुलफा, चरस, शराब, ताड़ी आदि पीते पिलाते पकड़े जाते हैं और फिर खूब उनकी पिटाई भी होती है जो लोग विवेक वैराग्य-सम्पन्न संसार को मिथ्या ज़ान कर ज्ञानप्राप्ति के लिये घरबार का त्याग करते हैं तो उनको सच्चे साधु मिल जाते हैं और अपने समान बना लेते हैं और वे लोग निरपेक्ष, शान्तरूप विचरते हुए देश-काल तथा प्रसङ्ग की बात भी जानते हैं। उन अभ्यागतों को सन्सार में किसी प्रकार की कमी नहीं रहती। जहां ढोंगी मनुष्यों

को गुरुभाव मिलने लगता है वहां अनाचार, अनीति अवश्य करके फैल जाते हैं फिर वहां ऐसी दशा में वेद, शास्त्र और सच्चे साधु ब्राह्मणों की पूछ नहीं होती, अस्तु।

देवी बोली—ये याद रख कि वाह वाह के चक्कर में नहीं पड़ना। वाह २ चाहने वाले प्राणी परलोक से भ्रष्ट हो जाते हैं अर्थात् बोध से शून्य होकर अज्ञान के वश ऐसे प्राणी स्वार्थ सिद्धि को पूरा करने के लिये ढोंग बांधते रहते हैं। उनका नाम संसार में संसारी मनुष्यों ने ताली बजा २ कर वाह २ रख लिया है। वेदान्त शास्त्र या गुरु उन पर यह कृपा करता है और शासन सुनाता है कि देख! बेर सवेर में यह तेरी चतुराई अवश्य नीचा दिखाएगी, और माता प्रकृति उनको यह पाठ अवश्य पढ़ाएगी, कि वह अपने धर्म से भ्रष्ट होकर छोटे से छोटे प्राणी के अधिकार में आकर दासत्व को स्वीकार करलेगा। अस्तु, महात्मा जी जिस मनुष्य में ऋद्धि तथा सिद्धियों की बात सुन कर उनके प्राप्त करने की अभिलाषा अङ्कुर न उत्पन्न हो तथा

कन्चन और कामिनी कीर्ति का अभिलाषी न हो दुराशा से मुक्त हो, दैवी गुण सम्पन्न हो और नवधा भक्ति का स्वयं आचरण करता हो और जिसका मन राग द्वेष से शून्य अलौकिक अक्षय और निष्काम दृढ़ चित्त हो वहां ही गुरु शब्द का अर्थ सीधा होता है वही सच्चा साधू है, क्योंकि उसमें ही विवेक वैराग्य से युक्त उदासीन वृत्ति भी होती है और शुद्ध आचार भी होता है । जो मनुष्य केवल अनेक प्रकार के अलंकारों को धारण करके शिष्य सम्प्रदाय चलाते हैं या धन का सञ्चय करते हैं और शरीर की 'अहंता' तथा 'ममता' के कारण परोपकार का बहाना लेकर अपना उल्लू सिद्ध करते हैं, वे गुरु नहीं हो सकते । वर्तमान काल में स्वार्थसिद्धि के कारण शरीर और इन्द्रियों का अभिमान उठा कर वेद शास्त्र की मर्यादा तोड़ कर ईश्वर-भक्ति, देश-भक्ति, जाति-भक्ति तथा मोक्ष के मार्ग को भूलते जाते हैं और स्वार्थ में आकर मान-प्रतिष्ठा प्राप्त होने पर शरीर का महत्व अधिक मान लेते हैं । वहां यह होता है कि शरीर बुद्धि अभिमान, और भी अग्नि में घृत डालने की तरह

भड़क उठता है। अस्तु हे महाराज! वेद तथा शास्त्र और महात्माओं का जो अनुभव होता है उसमें भेद नहीं होता है। वह अनुभव ही सद्गुरु देव की पूर्ति है। वही सम्पूर्ण शङ्काओं को निवारण करने में समर्थ है न कि मूछ मुंडे कांगरेसी और न कपड़े रंगे हुए ढोंगी मनुष्य। अस्तु महाराज! अध्यात्म विचार के बिना विरक्त, कुछ कांगरेसी गृहस्थियों तथा कुछ मूंछ मुंडे गोरों का कल्याण कदापि नहीं होता। महाराज! साधू को या तो जटा जूट चाहिये, या घोटम घोट यह वर्णसङ्करता नहीं करनी चाहिये। जहां परस्पर विरुद्ध धर्मों का मिलना होता है वहां वर्णसङ्करता आजाती है और जहां यह वर्णसङ्करता होती है वहां त्रिदोष सन्निपात हो जाता है। महाराज! गुरु तो वही होता है जो शास्त्र और मनुष्य जाति के विरुद्ध दूसरी बात नहीं जानता। अविद्या के कारण जीव, शिव तथा जगत् में जो भेद प्रतीत होता है, उसको जो नाश करे वही यथार्थ में गुरु है और वही सच्चा साधू है और वही आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जानता है। जो पुण्य

पाप तथा आवागमन के विषय को ठीक २ रीति से जानता है और मिथ्यात्व निश्चित् कर चुका है वही गुरु है। जो खाने, पीने के लिये ही गुरु शिष्य का व्यवहार जानता है, किंवा द्रव्य जोड़ता है, या लोभ में आकर धनवानों के पीछे २ फिरता है वह गुरु नहीं भिखारी है। तुमने देखा नहीं—हाय चांदी, हाय सोना, हाय बेटा, लोक परलोक, का नाम सुनकर सामान्य (प्राकृतिक) मनुष्यों का जीव चलायमान हो जाता है कि जिसके वास्ते देश देशान्तरों में कोलाहल मच रहा है और जिसके वास्ते घरों में खटपट मच रही है।

महाराज! विद्वानों ने प्रमाणित करदिया है कि इनका त्याग करना आनन्द और मुक्ति का साधन है। सोलह आने का रुपया धोखा खाये हुए मूर्ख मनुष्यों को सोलह कला युक्त भगवान से भी अधिक प्रिय है। विद्वानों को सोना चांदी नित्य आनन्द का देने वाला सिद्ध नहीं हुआ। अस्तु, महाराज! जिसके गले में पापिनी कामना पड़ी हुई है वह अपने धर्म को तिलाञ्जलि देकर धनवानों के

पीछे २ चला करते हैं और मीठी २ बातें बनाकर उनको सन्तुष्ट करना ही अपना धर्म जानते हैं और उनसे दव्र कर चलते हैं—वे ठग हैं गुरु नहीं। यह बात याद रखनी चाहिये कि जो साधु सिर के बाल रखकर मूछों को अपने हाथ से काटता है या साबुन तैल लगाकर स्नान करता है या अधिक मूल्य के कपड़े, जूता, छाता आदि रखता है वह साधु लुटेरा है, भोंदू है, ऐसे वेष-धारी साधुओं के चित्त में बड़े २ दोष छिपे रहते हैं। कल्याण की कामना रखने वालों को उनसे सदैव बचते रहना चाहिये। इन देह अभिमानी वेषधारियों से कभी भी जनता का कल्याण नहीं हो सकता। ये अपने सन्यास आश्रम के धर्मों से च्युत हैं। जो मनुष्य अपने वर्णाश्रम के धर्म कर्म नहीं करता उससे दूसरों का भला नहीं हो सकता। ये स्वार्थ-सेवी हैं और प्रमादी हैं।

कांग्रेसी महात्मा बोले—देवी महात्माओं को क्या करना चाहिये ?

देवी बोली—— सन्त महात्माओं को ज्ञान, वैराग्य नामस्मरण, स्वाध्याय, इन्द्रिय-संयम, स्ववर्णाश्रम-धर्म

नीति-मर्यादा, देश–मर्यादा, कुल–मर्यादा, जाति–मर्यादा कभी नहीं छोड़नी चाहिये। जो साधु इनको छोड़कर साधन के बिना परमार्थिक चर्चा या प्रतिष्ठा करता है वह प्रथम तो स्वयं ही भ्रष्ट होजाता है उसके पीछे बहुत से भ्रष्ट होजाते हैं। जिस देश के मनुष्य आचार, विचार, भजन, तप तथा उपासना को छोड़ देते हैं उस देश में स्वधर्माचरण और नवधाभक्ति आदि के नष्ट हो जाने से भ्रष्टाचार फैल जाता है और यही सांसारिक मनुष्यों के बहकने का साधन भी हो जाता है, अस्तु।

कांगरेसी बोला–देश सुधारक मनुष्य कैसा होना चाहिये?

देवी बोली–प्रथम तो सुधारक बोधवान होना चाहिये और वह जनता के उद्धार के लिये स्वयं नवधा भक्ति का आचरण करे, और दूसरे लोगों से भी कराए। जिन मनुष्यों को नवधा भक्ति का आधार नहीं होता वह जनता के सुधार की डींग मारते हैं, क्योंकि बिना भक्ति के सुधार करने से मनुष्य जाति में अनाचार फैल जाता है जिससे मनुष्य भ्रष्टाचारी होकर दुःखों का

भाजन बनजाते हैं। अज्ञानी पुरुष (अर्थात् देहाभिमानी) विषय अभिलाषी, आचार विचार से भ्रष्ट, वर्ण आश्रमों के धर्मों से च्युत उपदेशक से जनता में कोई लाभ नहीं होता अतः यथार्थवक्ता अनुभवी तथा तितिक्षु आप्त काम होना चाहिये, और वेद शास्त्रों की आज्ञा का तथा सगुण ब्रह्म का मण्डन करते हुए ऐसा मोक्ष मार्ग बताना चाहिये कि जिससे सम्पूर्ण प्राणी एक तो सदाचार में प्रवृत्त हों, और दूसरे परस्पर एक दूसरे के सुख तथा दुःख को अपना समझें। कोई किसी के साथ द्वेष नहीं करे, प्रेम भाव से रह कर व्यवहार करे अस्तु।

कांगरेसी महात्मा बोले—देवी! परस्पर लड़ाई झगड़े का कारण क्या है और यह परस्पर एकता का व्यवहार क्यों नहीं होता?

देवी बोली—यदि विचार की दृष्टि से देखो तो सम्पूर्ण विवाद इस व्यष्टि अभिमान को लेकर ही हो रहे हैं, इसलिये एकता का व्यवहार नहीं होता। इस अभिमान को उठाकर ही प्राणी अपने को पण्डित

बुद्धिमान, धनवान, गुणवान एवं सुखी तथा दुःखी असमर्थ समझ बैठा है। यदि व्यष्टि अभिमान को छोड़ कर समष्टि बुद्धि होजाय तो फिर कोई भी परस्पर लड़ाई झगड़े न रहें अतः यह एक देशी दुरभिमान किंवा अनात्मबुद्धि वा स्वार्थ सिद्धि ही सारे अनर्थों का कारण है। यदि प्रत्येक मनुष्य अपने २ अध्यात्मिक राज्य में शोक, मोह, एवं ईर्ष्या घमंड आदि रोगों की अच्छी प्रकार से चिकित्सा करने लगें तो बाहर की व्याधियों का आश्रय भूत शरीर ही न मिले तो पूर्ण स्वास्थ्य (अर्थात् तीनों तापों से रहित) सर्वदा कालके लिये होजाय और विवाद भी चुक जाय। अस्तु, और सुधार की असफलता का मुख्य कारण यह है कि तुम जैसे मूछ मुंडे उपदेशकर्ता भारतवर्ष में उतर आयेंगे तो स्वराज्य तो क्या तुम रही सही भारतवर्ष की आर्य्य सभ्यता को भी नष्ट भ्रष्ट करदोगे। सबके साथ खान, पान करने से जाति पांति तोड़ मंडल स्थापित करने से किंवा गुरु ब्राह्मण वेद शास्त्र की अवज्ञा करने से या स्ववर्ण आश्रम धर्म का तिरस्कार करने से तथा

शास्त्र विरुद्ध युक्तियों से कार्य कभी भी सफलता को प्राप्त नहीं हो सकता। जैसे रोगी अपनी इच्छा अनुसार खान, पान करता हुआ वैद्य की औषधि खाने पर भी रोग से छुक्त कदापि नहीं हो सकता अस्तु।

देवी बोली--महात्मा जी! पूर्वकाल में जब शत्रुओं से पराजित होने पर किसी राजा का राज्य छिन जाता था तो वे राजा ऋषि महात्माओं की शरण में जाते थे और ऋषि महात्मा उनको यह उपदेश करते थे कि तुम लोग जिन वस्तुओं को ऐसा मानते हो कि ये हमारी हैं और सदैव हमारे साथ रहेंगी उन को तुम लोग यही समझो कि यह नाशवान हैं। संसार स्वप्न के समान है उस स्वप्न-सन्सार में भिक्षावृत्ति और राज्य-पालन दोनों ही मिथ्या हैं अतः प्रजा का नाश न कराओ, राज्य शत्रु को दे दो। यदि वह तुमसे भी अधिक प्रजा को अधर्म से हटाकर धर्म के मार्ग पर लगाना चाहता है तो कोई हानि नहीं। ऐसा निश्चय करने से बुद्धिमान्, वेद-शास्त्रज्ञ तथा ब्राह्मण-भक्त अशक्त राजा कठिन से कठिन आपत्ति आने पर भी

प्रजा और अपने आपको आने वाले संकटों से बचा लेते थे और यदि शत्रु बलवान्, दुष्ट, अनाचारी, स्वार्थी होता तो सारी प्रजा, ऋषि-मुनि, देवी, देवता आदि उस राजा के सहायक होते थे। यदि स्वराज्यवादियों को स्वराज्य प्राप्त ही करना है तो देश में गांधी जैसे त्यागी स्वामी दयानन्द, कबीर, नानक, राधास्वामी, शङ्कर, बुद्ध, ईसा, मौहम्मद आदि जैसे भारतवर्ष के कोने २ में तपस्वी, त्यागी, वैरागी, सच्चे देश-हितैषी, धर्मरक्षक, सदाचारी बहुत हों तभी देश के सुधार की इच्छा रक्खो अन्यथा सूखे लैक्चरार होने से क्या बन सकता है? ऐसे तो जनता को ही अंधेरे गढ़े में ढकेलना है। अस्तु, अरे महात्मन्! जो मनुष्य अपने को न सुधार कर दूसरों का सुधार करना चाहता हैं वह कभी भी सुधार नहीं कर सकता, व्यष्टि के सुधार से समष्टि का सुधार अपने आप हो जाता है। अपने सुधार से दूसरों के सुधार की आवश्यकता ही नहीं रहती। आज कल महात्मा जी! लोगों में ढोङ्ग बहुत प्रवेश कर गया है। मनुष्य अपनी ओर दृष्टि न रख कर दूसरों पर आक्षेप

बहुत करते कराते रहते हैं। अस्तु, महाराज ! जैसे और युगों में मनुष्य-जीवन की अध्यात्म उन्नति के कारण होते थे उसी प्रकार आज कल युग राजा के राज्य में मनुष्य-जीवन की अवनति के कारण तथा स्वतन्त्रता के बाधक, धर्म के नाशक होरहे हैं।

देवी बोली महात्मा जी पहिले जाकर तुम अपना सुधार करो फिर सबका सुधार स्वयं होजाएगा। अस्तु महात्मा जो वर्तमान काल में हमारे भाई बहिन इस भारतवर्ष की ब्रह्मविद्या को गुरुमुख से पढ़ना पढ़ाना भूल गए, अर्थ तथा काम के अभिलाषी बनगए हैं। भौतिकवाद में उन्नति करना तथा कराना ध्येय बन गया है। पाश्चात्य शिक्षा के द्वारा शरीर में इस प्रकार अभिमान दृढ़ होगया है, जैसे पशुओं में स्वाभाविक होता है यदि कोई इनसे कहे कि तुम शरीर नहीं हो तुम तो आत्मा हो तो वह बिचारा सहसा भौचक्का हो जाता है। इस आत्म-भावना का फल यह होता है कि ऐसे मूढ़ अज्ञानी जीव तीनों तापों से मुक्त नहीं हो सकते, महाराज ! मनुष्य जीवन की सफलता

तभी समझनी चाहिये कि जब परं विचार की भावना हृदय कोट में उत्पन्न हो। जिन जन्मों में न अध्यात्म ज्ञान उत्पन्न होता है और नाहीं इन्द्रिय संयम कि मैं कौन हूं क्या करना है, कहां से आया हूं, इत्यादि कुछ भी ज्ञान नहीं रहता, वह सबके सब जन्मरूप वृक्ष फल हीन होने के कारण निष्फल जाने चाहिए। जिस जन्म रूप वृक्ष पर विचार रूपी फल लगते हैं वही जन्म सफल किंवा सार्थक है। देख! विचार सबका मूल है, मोक्षरूपी महल में किंवा स्वतन्त्रता रूप स्वराज्य रूपी महल में जाने के लिये अध्यात्म विचार को अर्थात् आत्मा अनात्मा के स्वरूप को प्रथम सीढी समझनी चाहिये। अतः अध्यात्म विचार के बिना कुवेष धारण करने से अर्थात् कुछ साधु वस्त्र, कुछ पाश्चात्य सभ्यता वाले और कुछ ग्रहस्थियों के वस्त्र पहनने से तेरे में सन्निपात का दोष आगया इस दोष रूपी रोग के नष्ट हुए बिना कल्याण कदापि नहीं हो सकता। अस्तु याद रख अविचार परंमृत्यु है, अविचार के पिटे हुए प्राणी जन्म मरण के चक्कर में ही घूमते रहते हैं। जब

तक प्राणी सर्व के अधिष्ठान निर्विशेष, अद्वितीय पर-ब्रह्म परमात्मा को अपने प्रत्यग् आत्मा से एक करके अनुभव अर्थात् साक्षात्कार नहीं कर लेते तब तक जीवों का जीवन पराधीन ही रहता है अर्थात् वह सब प्राणियों के दासत्वभाव का सेवन करते हुए दुःख पर दुःख उठाते रहेंगे अस्तु ।

कांगरेसी महात्मा बोला—देवी तुम इतनी दुबली क्यों हो ?

विश्रान्ति बोली—क्या तू यवन जाति का मनुष्य है, या चमार जो मांस चमड़े पर ध्यान देता है । बार २ खा २ कर शरीर को स्थूल कर देना केवल अविवेकियों का कर्म है आस्तिक सज्जन सत्पुरुषों का नहीं । जो अपने प्रेमपात्र आराध्य सीता तथा राधा, रुकमणी के भर्ता हैं, उनकी जिज्ञासा रखते हैं वे सांसारिक क्षण-भंगुर विनाशी, परिणामशील पदार्थों का ध्यान न देकर शरीर पर भी ध्यान नहीं रखते अर्थात् शरीर की तरफ़ से भी ध्यान उठा लेते हैं । बार २ खाना, बार २ मल मूत्र त्याग करना केवल पशुपना है, मनुष्यत्व नहीं ।

अयोग्य मूर्ख पञ्चभौतिक उन्नति वाले नास्तिक शरीर अभिमानी पुरुष ही बिना प्रयोजन एक ही वस्तु का बार २ अनुसन्धान करते कराते रहते हैं, आस्तिक नहीं। अस्तु, जब से भारतवासियों ने शक्ति से भर देने वाली ब्रह्म विद्या, माता का तिरस्कार करना किंवा ठुकराना प्रारम्भ किया है, तब से परस्पर लड़ाई झगड़े विभाग, रोग शोक अनार्यता कपट, दम्भ आदि आसुरी सम्पत्तिभाव आने प्रारम्भ होगए। अस्तु, महात्मा जी! अन्न तो केवल प्राण पुष्टि के लिए खाया जाता है नकि शरीर पुष्टि के लिए और प्राण की पुष्टि केवल इस कारण से की जाती है कि जिससे शरीर खड़ा रहे और हम लोग ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हुए परतन्त्रता के बन्धन से मुक्त होजांय। हमारा जीवन खाने पहिनने के लिये नहीं बना है वरन् खाना आदि हमारे लिए हैं। जो मनुष्य यह समझता है कि मनुष्य का जीवन केवल खाने पहनने के लिए ही मिला है, वह दैव का मारा हुआ परतन्त्रता के बन्धनों से कदापि मुक्त नहीं हो सकेगा अर्थात् अध्यात्मिक दुःख और आधिभौतिक

आधिदैविक दुःखों से युक्त ही रहेगा। अस्तु जिस शरीर रूपी मकान को बाहर के सामानो से सजते हैं किंवा हृष्ट पुष्ट करते कराते रहते हैं वह तो कृमि, हड्डी, चर्बी, मांस का ढेर है, जो प्राणी कामनाओं के बोझे से लदे हुए हैं उनको तो शीतला देवी का रोग जानो। ऐसों की सङ्गति से प्राणी रोगी होजाता है ऐसे लोग जहां कहीं अनुकूल विषय मिला फिर आपे में नहीं समाते और नाना प्रकार के भोग पदार्थों से केवल यह हमारे को शिक्षा देते हैं, कि भाई हम लोग चेचक किंवा तपेदिक के रोगी हैं हमसे बचते रहना चाहिये, यह बिमारी उड़के लगती है अस्तु।

कांग्रेसी महात्मा बोला देवी मेरी योग्यता के अनुसार मानव जीवन सफल बनाने के लिए कोई साधन बताओ।

विश्रान्ति बोली—अरे! महात्मन् वैसे तो अव्यवस्थित जीवन में अर्थात् पशु वृत्ति में कोई योग्यता नहीं होती जो अयोगी पुरुष होते हैं वह विश्वनाथ को छोड़ कर विश्व में तल्लीन रहते हैं किंवा शरीर तथा इन्द्रियों

के बन्धन में फंसे रहतेहैं तुम्हारे लिए तो 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हेनाथ नारायण वासुदेव" हैं। इस प्रकार गद्गद् होकर पहिले तू इसका जाप कर देख नाम से श्रेष्ठ और कोई कर्तव्य नहीं है व्यर्थ दूसरों के सुधार में इधर उधर मत घूम देख ! रामकृष्ण आदि नाम सम्पूर्ण दोषों के निवारक हैं। तुझ जैसे जड़ जीवों के लिये हरि भगवान तरण तारण हैं। एक नाम का ही तत्व धारण मन में दृढ़ करले हरि नारायण तुझ पर कृपा अवश्य करेंगे। परब्रह्म भगवान की भक्ति के बिना तीर्थ-तप, व्रत आदि और नाना प्रकार की सिद्धियों के लिये परिश्रम करना व्यर्थ है देख भाव मत त्याग सन्देह, हठ, और मूर्खता को छोड़ यदि तेरे को एकान्त में बैठ कर जो भगवान का नाम लेने से आलस्य आवे या निद्रा आवे तो खड़ा होकर गला फाड़ २ कर भगवान का नाम ले भगवान को पुकार भगवान विश्वनाथ सङ्कट-मोचन पतितपावन तेरी पुकार अवश्य सुनेंगे देख ! यह जो कुछ तुझको दृष्टिगोचर होता है सब चिद्विलास है। किसी को बुराभला मत कह सबको मन से प्रणाम

कर और न इसको प्रकृति रचित ही मान। यदि शान्ति
की इच्छा है तो त्याग में है और वह त्याग कि जिससे
तमाम दुःख दूर हो जाते हैं वह निष्काम भक्ति है अर्थात्
शुद्ध हृदय का नाम है जिसकी दृष्टि पड़ते ही नाम रूपा-
त्मक जगत का जगतपन अन्धेरे की तरह आत्मा रूपी
प्रकाश में लीन हो जाता है और तमाम सम्बन्ध सम्बन्धी
भाव सदैव के लिये मिट जाते हैं। सम्पूर्ण बन्धन छिन्न
भिन्न हो जाते हैं अपने पराये का भाव नहीं रहता अस्तु,
मैं स्पष्ट करके कहती हूं कि सब प्राणियों में सच्चिदानन्द
को देख संसार के लोगों को अपना आधार मत बना
विश्व रूप में विश्वनाथ प्रकट हुए हैं सब भूतों में विश्व
नाथ ही विराज रहे हैं। यही भाव चित्त में रख और
ढोंग छल कपट की बातें बनानी छोड़ और सम्पूर्ण दुःखों
को सन्तोष पूर्वक सहन करके हरिगुण गा। इस कलि-
काल में नाम स्मरण के सिवाय संसार सागर से तरने
का और कोई उपाय नहीं है सब योगों का सार तथा
भंडार और वेदान्त का आधार और ऋद्धि सिद्धियों का
सार और कर्मकाण्ड का तत्व यही है कि आचार सहित

भगवान की भक्ति कर। इतना कहकर विश्रान्ति देवी मौन होगई, और महात्मा अपने स्थान चले गये। विश्रान्ति मन में सोचने लगी कि मैं अपने परमात्मा के सत्स्वरूप अपार सुख को स्मरण करते हुए उनसे प्रार्थना करती हूं कि हमने जो कुछ माता के गर्भ में प्रतिज्ञा की थी उसको हम मानव जीवन में अच्छे प्रकार से पूरी करेंगे, और हमको जो कुछ भी खाली समय मिलेगा कुछ परमार्थ सम्बन्धी विषय की परस्पर मिलकर बात चीत करेंगे, अर्थात् भगवान की लीलाओं का गान करेंगे इतनी बात सोचकर विश्रान्ति बोल उठी कि मैं धन्य हूं मैं धन्य हूं मुझको सांसारिक दुःख चिन्ता आदि तीनों ताप नहीं सताते मेरा अज्ञान भागकर न जाने कहां चला गया मुझको अब कुछ करना कराना नहीं रहा जो मुझ को मिलना था वह मिल गया। संसार में मेरी शान्ति की उपमा नहीं मिल सकती।

अहो! मेरा कोई शुद्ध पुण्य बहुत फला, अहो शास्त्र! अहो शास्त्र!! अहो गुरु! अहो गुरु!! वाहरे ज्ञान! वाह रे ज्ञान!! अहो आनन्द! अहो आनन्द!!

हे परमात्मा मैंने तुम्हें भुला दिया था, इसीसे मेरी दृष्टि पर परदा पड़ गया था। मैं संसार की विषय ग्रन्थि में बन्ध हुई थी और उससे विह्वल होकर मेरी दृष्टि ऐसी अन्ध होगई थी कि संसार मुझको डसना चाहता था परन्तु दैवयोग से एकदम कृपालु गुरुदेव ने संसार सागर से मुझ डूबती हुई को निकाल लिया। गुरुदेव का धर्म मेरे हृदय कोट में जागृत हुआ, उससे अज्ञान का पर्दा फट गया, ज्ञान का निज बोध हुआ। गुरुदेव ने तीनों लोकों में विश्वरूप देखने की अद्वैत भाव की दिव्य दृष्टि दी उससे द्वैत नहीं दीखता। उपदेश निज ब्रह्म हुआ। ज्ञान अञ्जन लगते ही चिद्रूप दीपक देखा तन, मन एक दम शान्त होगये। यह दान जो गुरुदेव ने दिया इसका स्वाद सबसे मधुर है, अब मेरी शरीर दृष्टि चली गई और विदेह वृत्ति स्फुरण हुई। ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेय त्रिपुटि रूपी संसार अब कुछ न रहा। मैं और मेरा मन कहीं चला गया, और सद्गुरु के बोध से उपरामता की प्राप्ति हुई, धर्म मार्ग पर चलने के लिए शुद्ध मार्ग की उन्होंने मेरे हाथ साधन की लाठी पकड़ा

दी। जिस मार्ग से ऋषि मुनि आदि श्रेष्ठ पुरुष गये हैं उसी मार्ग से मैं भी चलूंगी। विषयान्ध मनुष्य को यह सब कुछ नहीं दीखता। यह कह कर तुष्णीं भाव को प्राप्त होगई। ओम् शान्ति! ओम् शान्ति!! ओम् शान्ति!!! यह अद्वैत ज्ञान, द्वैत ज्ञान को जड़ मूल से उखाड़ देता है, और अनेकान्त को एकान्त प्रदान कर देता है, नास्तिक को आस्तिक बना देता है, और अकर्मण्य को कर्म धर्म में अर्थात् स्ववर्ण आश्रम के कर्म धर्म में लगा देता है, अनित्य को नित्यता प्रदान कर देता है और सोते हुए को जगा देता है और जागते हुऐ को सावधान करदेता है और घबराये हुए अशान्त पुरुष को शान्त कर देता है और बुद्धिहीन (मूर्ख) को बुद्धि प्रदान कर देता है और कङ्गाल को धनवान बना देता है और रोते हुओं को हंसा देता है और चञ्चल चित्त वालों को योग में जोड़ देता है और मौत से डरने वालों को निर्भय कर देता है और दुःखी तथा रोगी पुरुषों को सुख तथा आरोग्यता प्रदान कर देता है, भव-मृग जल सदैव के लिये सूख जाता है। मिथ्या

बन्ध टूट जाता है जब देह अभिमान गल जाता है फिर धारणा ध्यान की भी समप्ति हो जाती है और समस्त कल्पनाएं झंझट चित्त से निकल कर निर्विकल्प अपने स्वरूप में एकता को प्राप्त हो जाते हैं केवल सत्ता मात्र चेतन स्वरूप रहता है। इस विश्रान्ति तथा महात्माओं के सम्वाद को जो श्रद्धा तथा भक्ति पूर्वक एकसौ आठ १०८ बार पाठ करेगा वह अवश्य मोक्ष पावेगा और वर्तमान काल में वह ब्रह्म-रूप से सर्वदा प्रकाशित रहेगा और गुरुभाव तथा प्रकाश युक्त युक्तिमान होगा जिसको कि हम लोग सदा चाहा करते हैं और मन सर्वदा शान्त रहता हुआ यह भाव-नाएं उसके हृदय कोट में गुञ्जारा करेंगी कि मुझे जो कुछ करना था वह कर लिया जो पाना था वह पा लिया यह मेरा लेख कोई मन घड़न्त नहीं है किन्तु उपनिषदों का सार तत्व है जो कि ईश्वरीय है। अतः इसको प्राकृतिक शिक्षा समझना चाहिए जैसे उल्लू को सूर्य की पहिचान नहीं होती वैसे ही सामान्य जन इस सम्वाद को नहीं समझेंगे। जो श्रोता या पाठकगण

अधिकारी होंगे वे ही इसको खोलकर वार २ पढ़ेंगे और समझेंगे और दूसरे लोग विषयासक्त प्राणी तो भाषा समझकर इसकी उपेक्षा करेंगे। ऐसे लोग दैव के मारे हुए होते हैं अतः मेरे प्यारे भाई बहिनों इसको बार बार पढो और समझो और अपने स्वरूप का ध्यान करो अनुभव में लाओ, आशा करो, साहस करो, पशु वत् उच्छृङ्खलता भाव को त्यागो और हर समय आनन्द से रहो पाश्चात्य शिक्षा की चकाचौंध में न रहो। अपने अध्यात्मिक राज्य का स्मरण करो और मनुष्य जीवन का लाभ उठाओ, निज शरीर की सेवा में तथा पूजा में ही तत्पर न रहो। —ओ३म् शान्ति शान्ति शान्ति ॥ ॐ ॥

" समाप्त "

शुद्धाशुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	१०	स	—
१६	३	इद	इस
१८	५	लेकर	होकर
१८	६	विपय	विषम
२१	२	धन	घन
३४	१८	जिनकी	जितनी
४७	१७	उक्ति	मुक्ति
५१	८	मित्या	मिथ्या
५२	५, ६	मित्या	मिथ्या
५३	३	ही	है
६१	१०	सिद्धि करो	आत्मा की सिद्धि करो
६७	४	के अर्थ	बेअर्थ
६६	१३	चित्र	चित्त
७१	८	काम	काया
७४	६	सम्पूर्ण	समर्पण
७८	१	रोग	योग
७८	४	धारण करे	धारण न करे
६०	३	पूर्ति	मूर्ति
६८	१६	आत्म	अनात्म
१०६	१६	मेरा मन	मेरापन